विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१६ मई-जून—१९९७ अंक—५-६

रामकृष्ण मिशन
शतान्दी अंक
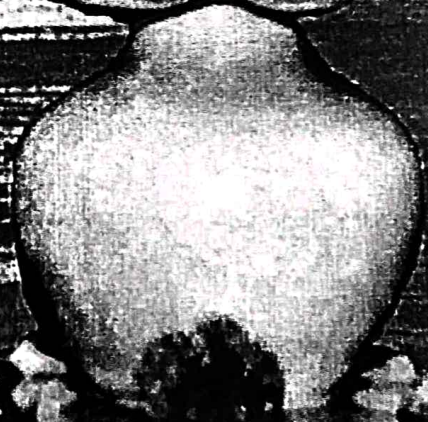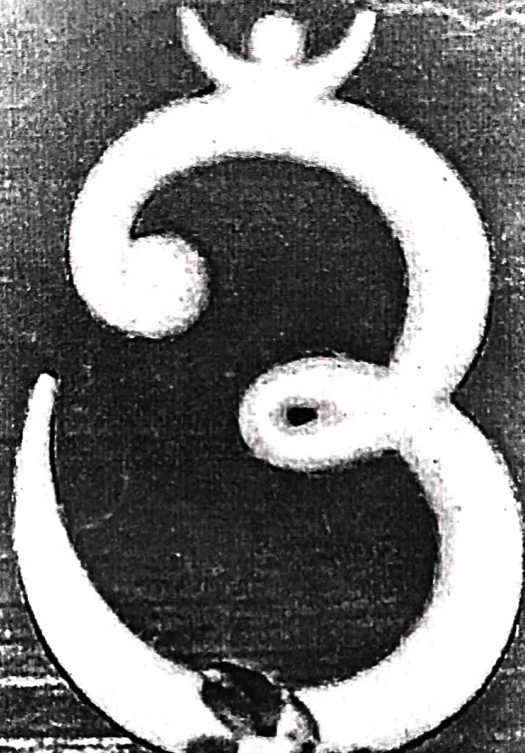
रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५७. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०, श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६३ डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर (उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसवीर कौर आहूजा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला बोर्दिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८, श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एस० टी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजीभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१६ मई-जून—१९९७ अंक–५-६

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३६

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

मनुष्य का पहला जन्म पिता से होता है, उपनयन उसका दूसरा जन्म होता है और संन्यास के समय फिर तीसरी बार जन्म होता है।

(२)

संसार में रहने से मन का बहुत-सा भाग फालतू खर्च हो जाता है; इससे मन को जो क्षति पहुँचती है उसकी पूर्ति संन्यास ग्रहण करने पर ही हो सकती है।

(३)

जल और जल का बुलबुला वस्तुतः एक ही हैं। बुलबुला जल से ही उत्पन्न होता है, जल ही पर रहता है और अन्त में जल ही में समा जाता है। उसी प्रकार जीवात्मा तथा परमात्मा वस्तुतः एक ही हैं। उनमें भेद केवल उपाधि के तारतम्य का है; एक पराधीन है, दूसरा स्वाधीन।

(४)

जो सच्चा भक्त है, जो आकण्ठ भगवत्प्रेम का प्याला पीकर नशे में मतवाला बन गया है, वह सब समय सामाजिक बन्धनों का पालन नहीं कर सकता।

(५)

जो हमेशा दूसरों के गुण-दोषो की चर्चा करते रहता है, वह अपना समय फालतू बरबाद करता है, क्योंकि परचर्चा करने से न तो आत्मचर्चा हो पाती है और न परमात्म चर्चा ही।

विवेकानन्द पञ्चकम्

—स्वामी रामकृष्णानन्द

अनित्यदृश्येषु विविच्य नित्यं, तस्मिन् समाधन्त्ते इह स्म लीलया ।
विवेक वैराग्य विशुद्धचित्तं योऽसौ विवेको तमहं नमामि ।।१

विवेकजानन्दनिमग्नचित्तं विवेकदानैक विनोद शीलम् ।
विवेकभासा कमनीयंकान्ति विवेकिनं तं सततं नमामि ।।२

ऋतञ्च विज्ञानमधिश्रयत् यत् निरन्तरं चादिमध्यान्तहीनम् ।
सुखं सुरूपं प्रकरोति यस्य आनन्दमूर्ति तमहं नमामि ।।३

सूर्यो यथान्ध्वं हि तमो निहन्ति विष्णुर्यथा दुष्टजनान् छिनस्ति ।
तथैव यस्याखिलनेत्र लोभं रूपं त्रितापं विमुखीकरोति ।।४

तं देशिकेन्द्रं परमं पवित्रं विश्वस्यपालं मधुरं यतीन्द्रम् ।
हिताय नृणां नरमूर्तिमन्तं विवेक-आनन्दमहं नमामि ।।५

इस जगत में अनित्य वस्तुओं से नित्य वस्तु को पृथक् कर जिन्होंने विवेकी लीला के वहाने उस नित्य वस्तु में विवेक और वैराग्य के प्रभाव से पवित्र चित्त को समाहित किया था, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ।।१

विवेक से उत्पन्न आनन्द में जिनका चित्त निमग्न था, जो विवेक का दान कर ही आनन्दित होते थे, विवेक ज्योति से जो रमणीय रूपवान् थे, उन्हीं विवेकी को मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ।।२

जिनका सुरूप सत्य और विज्ञान को आश्रय ले निरवकाश नित्य सुख प्रदान करता है, उस आनन्दरूप मूर्तिधारी को मैं प्रणाम करता हूँ ।।३

सूर्य जिस प्रकार गहन अन्धकार का नाश करता है, विष्णु जिस प्रकार दुष्टों का संहार करते हैं, उसी प्रकार जिनके अखिल नयन लोभनीयरूप त्रिताप को विनष्ट करते हैं— ।।४

लोक कल्याण के लिए अवतरित उन आचार्य प्रवर, परम पवित्र, जगत्-पालक, आनन्दमय, योगिवर विवेकानन्द को मैं प्रणाम करता हूँ ।।५

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो

मेरे आत्मस्वरूप मित्रों,

पश्चिमी जगत् में भारतीय धर्म की ध्वजा लहराकर विश्वजयी स्वामी विवेकानन्द के भारत प्रत्यागमन एवं रामकृष्ण मिशन की स्थापना का यह शताब्दी वर्ष है। रामकृष्ण मिशन स्वामी विवेकानन्द की समग्र आध्यात्मिक साधना का संगीत है। उनके प्राणों का पुष्प है। उनके धर्म, दर्शन, और गहन चिन्तन का क्रियात्मक उन्मेष है। इसमें श्रीरामकृष्ण की चैतन्य दृष्टि का रस है और माँ सारदा की स्वस्ति की सुगन्ध है। धर्म-पथ पर लोक-मंगल के इस महारथ को चलते हुए सौ वर्ष पूरे हो गये।

आइए, आज मैं आपको एक युग-चक्र-परिवर्तन की सौ वर्षों की कथा-यात्रा पर ले चलता हूँ।

आज से ठीक सौ वर्ष पूर्व। १५ अगस्त, सन् १८८६ ई०। रविवार। मध्यरात्रि समाप्त हुई। एक घण्टा और बीत गया। सारी दुनिया काली रात की गोद में अचेत सोयी है। नहीं सो पा रहे हैं केवल कुछ वीतरागी, आत्मतत्वान्वेषी, अमृत-पथ के राही युवकवृन्द—श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव के तेजोद्दीप्त शिष्यगण। कलकत्ते के काशीपुर उद्यान भवन में ठहरे इन शिष्यों में एक आकुल जागरुकता है, एक बेचैन तत्परता है, एक अधीर घुमड़न है। उद्यान भवन की ऊपरी मंजिल के एक कमरे में एक दीपक शान्त-स्थिर भाव से जल रहा है। एक विचित्र विलक्षण प्रशान्ति पसरी हुई है। घड़ी धीरे-धीरे टिक्-टिक् करती बढ़ रही है। अब उसकी सुई दो मिनट आगे रेंगती है——कि अचानक 'काली! काली! काली! ओऽऽऽम् !,—एक स्पष्ट, मधुर सांगीतिक स्वर गूँज उठा। और इस स्वर झंकार, इस दिव्य अनाहत नाद के साथ ही प्राय: पिछले चालीस वर्षों से फैली-पसरी असीम आनन्द, निरंजन नृत्य और स्वर्गीय संगीत की एक हाट उठ गयी। दैवी-साधना और ईश्वरीय संदेश की एक अखण्ड दीपशिखा किसी विराट् अनन्त आलोक-लोक में लीन हो गयी। श्रीरामकृष्ण ने अपनी इहलीला का संवरण कर महासमाधि ले ली। उनके लीलासंवरण का त्रितावहारी स्मरण कर पद्मों में हम अपने शत-शत प्रणाम अर्पित करते हैं।

लेकिन उस दिन श्रीरामकृष्ण ने मात्र अपने पार्थिव शरीर का परित्याग किया था, दैहिक लीला का संवरण किया था। वे मात्र एक कमरे से दूसरे कमरे में गये थे। उन्होंने कई बार श्री माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द एवं कई अन्य शिष्यों को अपने दर्शन दिये और कई विषयों में उनका मार्ग-दर्शन किया। ये दर्शन आध्यात्मिक आश्वासन- पुनराश्वासन थे, इस बात के कि जो राम थे, जो कृष्ण थे, वही इस बार श्रीरामकृष्ण के रूप में अवतरित हुए थे और अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्ण अब भी विराजमान हैं अपने सूक्ष्म रूप में—लोक कल्याण के लिए, विश्व मंगल के लिए। जो चाहे, जब चाहे हृदय की आतुर पुकार से, विकल प्रार्थना से उनका दर्शन कर सकता है।

'बुझ जाता है दीप मगर आलोक नहीं मरता है।' उस दिन मिट्टी का एक दीपक टूट गया था। उसे टूटना ही पड़ता है। कभी-न-कभी उसे टूटना ही था। लेकिन उस दीपक की अमर अखंड ज्योति पिछले शताधिक वर्षों से और अधिक प्रखर होकर, और अधिक भास्वर होकर जगमगा रही है। वह ज्योति अंधकार से भरे वर्तमान विश्व के विकल, उद्भ्रान्त, पथहारा मानव समुदाय में एक नयी शक्ति एक नयी चेतना और सबल आशा—विश्वास का संचार कर उसका पथ-प्रदर्शन कर रही है। टूटकर उस दीपक ने एक नया रूप, एक नया आकार ग्रहण कर लिया—ज्योति का रूप, आलोक का आकार। उसी रूप, उसी आकार की संज्ञा है—रामकृष्ण संघ।

"यह संघ भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का प्रत्यक्ष शरीर है और इस संघ में वे सदैव विराजमान है।—जो संघ को पूजा करते हैं, वे भगवान की ही पूजा करते हैं और जो इसे नहीं मानते, वे उनकी भी अवमानना करते हैं।"—उक्ति है त्रिकालदर्शी ऋषि स्वामी विवेकानन्द की, रामकृष्ण संघ के विषय में। इस संघ की स्थापना भी प्रकारान्तर से स्वयं श्रीरामकृष्ण देव ने ही, अपनी महासमाधि से कुछ ही दिनों पहले, १८८६ ई० में ही की थी। काशीपुर के उसी उद्यान भवन में अपने ११ तरुण शिष्यों को एक दिन उन्होंने अपने हाथों से गेरुआ वस्त्र प्रदान किया था और उसके हाथों दिया था कमण्डलु—भिक्षा-पात्र। कहा था, शहर की गलियों में जाकर भिक्षाटन करो। शिष्यगण भिक्षान्न लेकर लौटे और उसे पकाकर उन्होंने श्रीरामकृष्ण को नैवेद्य दिया। ठाकुर ने कुछ दाने अपने मुँह में डालकर कहा—बहुत अच्छा। अहा, यह भोजन बड़ा पवित्र है। और नरेन्द्र से उन्होंने कहा—"नरेन, इन बच्चों का भार मैं तुम पर छोड़े जा रहा हूँ। देखना कि ये जप-ध्यान करते रहें। इन्हें घर नहीं लौटने देना। इनकी रक्षा करना। इन्हें सत्यपथ पर चलाना। मैं शीघ्र ही देह-त्याग करूँगा।" रामकृष्ण संघ की स्थापना वस्तुतः उसी दिन हो गयी। उस क्षण को, जब श्रीरामकृष्ण ने अपने उपस्थित ११ शिष्यों को संन्यास देकर एक अघोषित संघ की स्थापना की, एक नूतन युगधर्म का चक्र-प्रवर्तन किया, हम सब श्रद्धानत होकर प्रणाम करते हैं।

और रामकृष्ण मठ की स्थापना भी १८८६ में ही हो गयी। १६ अगस्त को भजन-कीर्तन वैदिक मंत्रोच्चार और 'जय भगवान श्रीरामकृष्ण की जय' की ध्वनि के साथ वराह नगर के गंगा-तट पर श्रीरामकृष्ण की पार्थिव देह का अग्नि-संस्कार किया गया। फिर उनके शिष्यों ने उनकी अस्थियों और भस्मावशेष को कई कलशों में भरकर श्रीरामकृष्ण के एक प्रमुख गृही भक्त श्री बलराम वसु के मकान में स्थापित किया। कुछ भस्म-कलश ठाकुर के एक अन्य गृही भक्त श्रीरामचन्द्र दत्त के काकुड़गाछी स्थित योगोद्यान में भी स्थापित किया गया। यह उद्यान-साधना-भजन के लिए उपयुक्त समझकर श्रीरामकृष्ण के संकेत पर ही श्रीदत्त ने खरीदा था और स्वयं श्रीठाकुर एकाधिक वार वहाँ जाकर ठहरे भी थे। श्री वसु के निवास पर स्थापित अस्थिकलशों की शशि महाराज (स्वामी रामकृष्णानन्द) नित्य पूजा-आरती किया करते थे।

तभी एक दिन घटना घटी—विलक्षण और अद्भूत घटना। सितम्बर १८८६ की एक संध्या श्रीरामकृष्ण के एक गृही शिष्य सुरेन्द्रनाथ मित्र अपने आवास के पूजा-गृह में ध्यान-मग्न हैं। अकस्मात् श्रीरामकृष्ण उनके समक्ष उपस्थित होकर उनसे कहते हैं—"तुम यहाँ क्या कर रहे हो ? मेरे बच्चे स्थानाभाव में इधर-उधर भटक रहें हैं। कुछ भी करने के पहले तुम उनकी देख-भाल करो।" सुरेन्द्र

शीघ्र नरेन्द्र के पास जाते हैं और उनसे कहते हैं कि वे शीघ्र एक मकान ढूँढ़ें जहाँ श्रीरामकृष्ण के अस्थिकलशों की नियमित पूजा अर्चना की जा सके, जहाँ उनके संन्यासी शिष्यगण समवेत रूप से रह सकें और गृही भक्त भी जहाँ समय-समय पर आते-जाते रहें। तदर्थ वे आर्थिक भार वहन करेंगे।

नरेन्द्रनाथ ने वराह नगर में गंगा के तट पर एक सस्ता मकान भाड़े पर लिया। १८८६ ई० के सितम्बर के अंत तक उसमें श्रीरामकृष्ण के अस्थिकलशों को स्थापित कर मठ की स्थापना की गयी। और श्रीरामकृष्ण का धर्म-चक्र गतिमान हो उठा। यद्यपि वह मकान खंडहर जैसा था, रात में साँप फुफकार करते, सियार हुआ-हुआ करते, भोजन की समुचित व्यवस्था का नितान्त अभाव था तथापि श्रीरामकृष्ण के तरुण संन्यासी शिष्यगण वहाँ एक ईश्वरीय आनन्द से झूम कर रहने लगे, कीर्तन-भजन, जप-ध्यान, शास्त्र-पाठ और धर्म चर्चा में लीन होकर रहने लगे। उन्हें न भोजन की चिन्ता थी न वस्त्र की परवाह। यही वराह नगर मठ भावी रामकृष्ण मठ और मिशन का बीजरूप था।

१८८६ ई०। दिसम्बर का अंतिम सप्ताह। नरेन्द्र अपने कुछ गुरुभाइयों के साथ आते हैं बाबूराम के गाँव—हुगली जिलान्तर्गत आँटपुर। बैठते हैं एक रात बाहर के प्राङ्गण में गुरु भाइयों को लेकर और सुनाने लगते हैं ईसा मसीह की जीवन-गाथा। सुनाते हैं ईसा की वाणी—'सियारों की अपनी माँद होती है, और चिड़ियों को अपने घोंसले होते हैं, किन्तु प्रभु के पुत्रों को अपना सिर छिपाने को भी जगह नहीं होती।' और फिर वे ईसा के शिष्यों की यात्रा-गाथा सुनाते हैं और अपने गुरु भाइयों को परम वैराग्य और त्याग में प्रतिष्ठित होकर जीवन-यापन करने का संकल्प लेने को प्रेरित करते हैं। धुनी जला दी जाती है। और सभी गुरु भाई एक साथ खड़े होकर, अग्नि और आकाश के नक्षत्रों को साक्षी रखकर संसार-त्याग का महान् व्रत लेते हैं, नया नाम, नया वेश ग्रहण करते हैं। नरेन्द्रनाथ हुए—स्वामी विवेकानन्द, निरंजन हुए—निरंजनानन्द, शशि—रामकृष्णानन्द, शरत्—सारदानन्द, राखाल—ब्रह्मानन्द, सारदा—त्रिगुणातीतानन्द, बाबूराम—प्रेमानन्द और काली हुए—अभेदानन्द।

इसके कुछ ही दिनों बाद संन्यास ग्रहण कर तारक हुए—शिवानन्द, हरि—तुरीयानन्द, लाटू—अद्भुतानन्द, योगेन—योगानन्द, गोपाल—अद्वैतानन्द, सुबोध—सुबोधानन्द और गंगाधर—अखण्डानन्द। अंत में आये हरि प्रसन्न जो हुए—विज्ञानानन्द।

शुरू हुई इन १६ अग्निधर्मा युवा संन्यासियों की विश्व-स्पन्दनकारी ऐतिहासिक आध्यात्मिक यात्रा। स्वामी रामकृष्णानन्द मठ में रहकर ठाकुर की पूजा-आरती और मठवासी संन्यासियों की देख-रेख करने लगे। और निकल पड़े कुछ संन्यासी—अनजाने अनचीन्हे तरुण संन्यासी—परिव्राजक के रूप में भारत-भ्रमण करने, तीर्थाटन करने, तपस्साधना करने। स्वामी विवेकानन्द ने सम्पूण भारत की यात्रा की—कष्टकर यात्रा। इस यात्रा में उन्होंने राजाओं के महलों से लेकर गरीबों की झोपड़ियों तक में ठहर कर भारत की आत्मा को परखा-पहचाना। १८९२ ई० में भारत के अंतिम दक्षिणी छोर पर स्थित कन्याकुमारी के शिलाखण्ड पर बैठकर भारतीयों की वर्त्तमान दुरवस्था पर ध्यान किया और उसका निदान ढूँढ़ा। फिर शिकागो (अमेरिका) की धर्म-सभा में भाग लेकर पराधीन भारत के आध्यात्मिक गुरुत्व की विजय-पताका लहराकर वे १८९७ ई० में युगनायक के रूप में भारत लौटे।

इस बीच १८९१ ई० के नवम्बर महीने में वराह नगर से आलम बाजार के एक भाड़े के मकान में मठ स्थान्तरित हो गया।

भारत लौटने पर १८९७ ई० की पहली मई को स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण के गृही और संन्यासी शिष्यों की एक सभा बुलाकर 'रामकृष्ण मिशन' नामक एक समिति का गठन किया। इसके प्रस्ताव में कहा गया—मानव कल्याण के लिए श्रीरामकृष्ण ने जिन सब तत्त्वों की व्याख्या की थी एवं उनके कार्यों एवं जीवन के द्वारा जो प्रतिपादित हुए हैं उनके प्रचार एवं मनुष्य के दैहिक, मानसिक और पारमार्थिक उन्नति के लिए जो तत्त्व प्रयुक्त हो सकते हैं उनमें सहायता करना इस मिशन का उद्देश्य है।

१८९८ ई० में बेलुड़ में एक मकान सहित कुछ भूमि खरीदी गयी। इस भूमि पर भवन बनाकर जनवरी १८९९ ई० में बेलुड़ मठ की स्थापना की गयी। यह बेलुड़ मठ वराह नगर के गंगा तट के, जहाँ श्रीरामकृष्ण का दाह-संस्कार किया गया था, प्राय: ठीक सामने दूसरे पार में अवस्थित है। उस दाह संस्कार के दिन कौन जानता था कि जहां श्रीरामकृष्ण का पार्थिव शरीर अग्नि को अर्पित किया जा रहा है, मात्र अगले १२वें वर्ष में ही, उसके ठीक सामने वे अपने सूक्ष्म चैतन्य रूप में अवस्थित होकर सारे विश्व को धर्म संवलित एक समन्वित जीवन जीने की प्रेरणा और प्रकाश प्रदान करते रहेंगे।

१९०९ ई० में रामकृष्ण मिशन एसोसिएशन का १८६० ई० की २१वीं धारा के अनुसार पंजीकरण हुआ। यह बेलुड़ मठ ही रामकृष्ण मठ एवं मिशन का मुख्यालय है—रामकृष्ण संघ का प्राण-केन्द्र, शक्ति पीठ है।

यहाँ हमारे मन में एक प्रश्न उभर सकता है। क्या इस मठ एवं मिशन की स्थापना पहले से ही विराजमान भारत के अनेक धार्मिक सम्प्रदायों की कड़ी में एक और सम्प्रदाय जोड़ने की चेष्टा नहीं है? यदि नहीं, तो फिर क्या प्रयोजन था रामकृष्ण संघ की स्थापना का? हमें इस प्रश्न पर विचार करना ही चाहिए।

बेलुड़ मठ की स्थापना के कुछ ही पूर्व 'मठ की नियमावली' बनाने के क्रम में स्वामी विवेकानन्द जी ने लिखा था :

"भगवान श्रीरामकृष्ण द्वारा बनायी गयी प्रणाली का अवलम्बन कर अपने लिए मुक्ति प्राप्त करने तथा संसार का सब प्रकार कल्याण करने की शिक्षा पाने के उद्देश्य से इस मठ की स्थापना की गयी। नारियों के लिए भी इसी प्रकार का एक मठ स्थापित किया जायगा।" लेकिन फिर प्रश्न उठेगा कि श्रीरामकृष्ण द्वारा बनायी गयी प्रणाली कौन सी है?

सन् १८८४ ई० की कथा है। एक दिन श्रीरामकृष्ण उपस्थित भक्तों को वैष्णव धर्म का सार समझाते हुए जीवों पर दया करने की बात कहते हैं। और फिर हठात् समाधिस्थ हो जाते हैं। समाधि से थोड़ा उतरने पर अर्द्ध बाह्य दशा-शून्य स्थिति में ही वे कहते हैं—"जीवे दया? धत्! तू कीटानुकीट होकर जीवों पर दया करेगा? दया करनेवाला तू कौन है? नहीं, नहीं, जीवों पर दया नहीं—शिव

भाव से जीव-सेवा।" उसी दिन, उसी क्षण, मानो भावी रामकृष्ण संघ के महदुद्देश्य की, महामंत्र की अलिखित घोषणा हो गयी थी—'शिव भाव से जीव की सेवा करो।' क्यों ? स्वयं श्रीरामकृष्ण का कथन है : "मिट्टी की प्रतिमा में ईश्वर हैं और मानव शरीर में नहीं हैं ? नहीं, मनुष्य में ईश्वर का, परम चैतन्य का तो और भी अधिक प्रकाश है !"

श्रीरामकृष्ण यह भी कहा करते थे कि मानव जीवन का लक्ष्य है ईश्वर प्राप्त करना। किन्तु, साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि भूखे पेट से ईश्वर की आराधना नहीं हो सकती। फिर कभी उन्होंने कहा था, कामिनी कांचन के त्याग के बिना ईश्वर लाभ नहीं किया जा सकता। और फिर उन्होंने कहा था सभी धर्म ईश्वर की ओर ही ले जाते हैं—यतो मत ततो पथ। ऐसे ही कितने अमृत-वचन उन्होंने कहे थे।

नरेन्द्र नाथ ने इन सब सूत्रों को सुना था। इन पर मनन-चिंतन किया था। इन कथनों की उपयुक्तता पर गंभीरता से विचार किया था। और तब नर-शार्दूल नरेन्द्रनाथ का मन भावों से भर उठा था। आह, गुरुदेव ने कितनी अच्छी, कितनी उदार और कितनी नयी बातें कही हैं ! इन आदर्शों को जीवन में ढालकर ही नये स्वस्थ समाज की रचना हो सकती है।

अव तक के साधु-संत केवल अपनी मुक्ति पर बल देते रहे और समाज सुधारक नेतागण जीवों पर दया करने की घोषणा करते रहे। ये दोनों दृष्टियाँ एकांगी हैं। श्रीरामकृष्ण के पूर्व किसी संत ब्रह्मज्ञ पुरुष के मुख से यह नहीं सुना गया कि अपनी मुक्ति के साथ शिव भाव से, पूजा-भाव से जीवों की सेवा करो; अनासक्त भाव से, लोक मंगल के भाव से कर्म करो। यह नये युग के लिए सर्वथा विलक्षण, सर्वथा नूतन दृष्टि है, नूतन मंत्र है। इसी से स्वामीजी ने रामकृष्ण संघ का आदर्श वाक्य रखा—'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'। अपनी मुक्ति और विश्व मंगल के लिए रामकृष्ण संघ का धर्म-चक्र चलता रहेगा, चलता रहेगा, चलता रहेगा।

अव तक ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग इन चारों पथों से ईश्वर की प्राप्ति की बात कही गयी थी। अलग-अलग ये रास्ते हैं। इनमें से किसी एक पथ पर चल कर ईश्वर लाभ कर लो। ये चारों मार्ग चार प्रकार की प्रकृति के लोगों को ध्यान में रखकर स्थिर किये गये हैं। किन्तु क्या कोई मात्र बुद्धि-प्रवण या भाव-प्रवण होता है ? श्रीरामकृष्ण की नवीनता इस बात में है कि उन्होंने इनमें से एक या अनेक या सबके द्वारा ईश्वर-लाभ करने की बात कही। इतना ही नहीं। उन्होंने समझा कि केवल ज्ञान से मनुष्य के शुष्क-नीरस हो जाने का और मात्र भक्ति से उन्मादग्रस्त, भावुक और विक्षिप्त हो जाने का भय रहता है। अतः उन्होंने ज्ञान मिश्रित भक्ति या भक्ति मिश्रित ज्ञान व साधना की बात कही। साथ ही मनुष्य को ही नहीं, प्रत्येक जीव को शिव-स्वरूप समझकर उनकी सेवा करने अर्थात् अनासक्त कर्म करने की प्रेरणा दी। इस प्रकार श्रीरामकृष्ण ने एक समन्वित आध्यात्मिक पथ का निर्देश किया, एक रासायनिक और वैज्ञानिक साधना का मार्ग सुझाया जो इस युग के लोगों के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

श्रीरामकृष्ण का कर्म-दर्शन भी कितना विलक्षण है ! उन्होंने साकार-निराकार दोनों रूपों से साधना की बात कही। फिर इसके साथ ही एक छोटा सहज सरल प्रश्न किया—"यदि मिट्टी की मूर्ति

की पूजा की जा सकती है तो मनुष्य की पूजा क्यों नहीं की जा सकती ? क्या केवल आँख मूँदने पर ही ईश्वर को देखा जा सकता है, आँख खोलने पर नहीं—यह कैसी बात है ! ईश्वर सभी जीवों में, सभी अवस्थाओं में विराजते हैं। इच्छा होने पर ही ईश्वर का दर्शन किया जा सकता है''। इस प्रकार शिवदृष्टि से कर्म करने की एक अनूठी बात श्रीरामकृष्ण ने कही।

श्रीरामकृष्ण थे विविध पथों के यात्री। उन्होंने न केवल साकार, निराकार, शैव, शक्ति, वैष्णव, तंत्र आदि हिन्दुओं की विभिन्न धार्मिक पद्धतियों की साधना की बल्कि इस्लाम और ईसाई धर्मों की भी साधना कर सत्य का प्रत्यक्षीकरण किया और तब उन्होंने घोषणा की—यतो मत ततो पथ—जितने मत हैं वे सभी ईश्वर तक जाने के पथ हैं। यह केवल भावुकता से भरी वाणी या तर्क संकुल वाणी नहीं थी, बल्कि इसमें थी प्रत्यक्ष अनुभूति की प्रामाणिकता। और इसलिए यहाँ अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की राजनैतिक बात नहीं कही गयी बल्कि उनकी सहज स्वीकृति की आत्मीय गाथा गायी गयी है।

प्रत्येक धर्म, प्रत्येक पंथ में जो परम सत्य रहता है वही चिरस्थायी होता है। सभी धर्मों की मूल बात वही सत्य है। नेति-नेति नहीं, इति-इति। ईश्वर हैं, ईश्वर हैं। उन्हें पाया जा सकता है, उन्हें पाऊँगा। यही है श्रीरामकृष्ण की नूतन जीवन दृष्टि।

हाँ, कामिनी-कांचन का त्याग किये बिना ईश्वर को नहीं पाया जा सकता। इसका अर्थ नारी से घृणा करना नहीं है। नारी को देखने की दृष्टि में परिवर्तन करना है। वह है शक्ति स्वरूपा—जगज्जननी का अंश। उस मातृरूपा नारी की भक्ति करो, श्रद्धा-सम्मान और उपासना करो। इसके साथ ही कामिनी से ठाकुर का तात्पर्य है—कामासक्ति। कांचन से तात्पर्य है अर्थासक्ति। (नर नारी को और नारी नर को काम-भाव से नहीं देखे।) जब तक ये दोनों एक दूसरे को देहासक्ति से, काम भाव से देखेंगे तब तक चित्तशुद्धि नहीं हो सकती और शुद्ध-चित्त हुए बिना ईश्वर को कथमपि पाया नहीं जा सकता—यह था ठाकुर का भाव।

तब गृहस्थ जन क्या करें ? क्या यह सबके लिए संभव है ? श्रीरामकृष्ण गृहस्थों को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि वे घर में दासी की तरह रहें। अर्थात् घर के सारे कार्य करते हुए भी अपने अन्तर्मन को ईश्वर में लगाये रखें, आसक्त न हों। दो-तीन बच्चों के हो जाने पर पति-पत्नी भाई बहन की भाँति परस्पर प्रीतिपूर्वक ईश्वरोन्मुखी भाव से रहें। भय क्या है ? अपने को पापी क्यों समझोगे ? जो ईश्वर सदैव हृदय में विराजते रहते हैं वे क्या पापी हो सकते हैं या ईश्वर के सान्निध्य में रहनेवाला मनुष्य क्या कभी पापी हो सकता है। कभी नहीं। केवल ईश्वर को पुकारो, उनका चिन्तन करो, उनके अभय पदों में मन को लगाये रखो। कैसी आश्वस्ति की वाणी है

इन्हीं आदर्शों के अनुसार जीवन गठन करने के लिए, मानव जीवन का पूर्ण रूपान्तरण करने के लिए और लोक मंगल के लिए, रामकृष्ण की वाणी से विश्व को आलोड़ित, स्पंदित और परितृप्त कर देने के लिए रामकृष्ण संघ की स्थापना हुई—किसी नये सम्प्रदाय को खड़ा करने के लिए नहीं।

और तब शुरू होता है रामकृष्ण संघ का महान आध्यात्मिक अभियान और विराट् कर्म-यज्ञ। स्वामी विवेकानन्द ने पश्चिमी जगत के देशों में जाकर जिस व्यावहारिक वेदान्त का हियहारी उपदेश

दिया था उसे उनके गुरुभाई स्वामी अभेदानन्द, स्वामी सारदानन्द आदि विश्व के कोने-कोने में फैलाने लगे। विदेशों में वेदान्त मठों की स्थापना होने लगी। स्वयं स्वामीजी ने कोलम्बो से अलमोड़ा तक वेदान्त के सार तत्व को जीवन में ढालने का अमृत संदेश दिया।

फिर शुरू हुआ सेवा-यज्ञ। स्वामीजी ने अपने गुरु भाई स्वामी अखण्डानन्द को अमेरिका से लिखा था—"दरिद्र, अज्ञ, निरक्षर पतित मनुष्यों में ही तुम्हारे ईश्वर निवास करते हैं। जान लो, इनकी सेवा करना ही सबसे बड़ा धर्म है।" समाज के इन्हीं उपेक्षितों के लिए राजस्थान में 'विद्यायतन' की स्थापना की गयी। १८९७ ई० में मुर्शिदाबाद में भीषण अकाल पड़ा। स्वामीजी ने कुछ रुपये देकर दो व्यक्तियों को राहत कार्य के लिए भेजा। स्वामी अखंडानन्द के निर्देशन में राहत कार्य शुरू हुआ। अकाल के बाद कई अनाथ बच्चों का भार आ पड़ा अखण्डानन्द के ऊपर। इन्हें लेकर सारगाछी में उन्होंने एक आश्रम खोला—स्थापित हुआ रामकृष्ण मिशन का प्रथम शाखा केन्द्र। इसी वर्ष स्वामीजी के परामर्श पर स्वामी रामकृष्णनन्द ने मद्रास में एक मठ की स्थापना की। यह रामकृष्ण मठ का प्रथम शाखा मठ है।

१८९८ ई० में स्वामीजी की शिष्या मार्गरेट नोबुल स्थायी रूप से भारत आयी और ब्रह्मचर्य व्रत लेकर वे भगिनी निवेदिता हो गयीं। स्वामीजी के निर्देश पर वे नारी सेवा के कार्यों में पिल पड़ीं। उन्होंने नारियों के कल्याण के लिए कलकत्ते में एक विद्यालय स्थापित किया जो आज निवेदिता स्कूल के नाम से प्रख्यात है। इसी समय कलकत्ते में प्लेग का भयानक आक्रमण हुआ। निवेदिता और स्वामी सदानन्द लोक सेवा में कूद पड़े—अपने प्राणों की किंचित् परवाह किये बिना।

१८९९ में स्वामीजी ने पुनः वेदान्त और रामकृष्ण भाव के प्रचार के लिए इंग्लैंड और अमेरिका की यात्रा शुरू की—स्वामी तुरीयानन्द और निवेदिता को साथ लेकर। १९०० ई० में वे भारत लौट आये। इसी समय स्वामीजी ने अपने शिष्य स्वामी कल्याणानन्द को, जो किशनगढ़ में दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा कर अपने गुरु के दर्शनार्थ लौटे थे, निस्सहाय रुग्ण साधु संन्यासियों की सेवा के लिए हरिद्वार भेजा। उन्होंने कनखल में सेवाश्रम स्थापित किया जहाँ आज विशाल अस्पताल खड़ा हो गया है।

वाराणसी में स्वामीजी के निर्देश पर रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम की स्थापना हुई। इस आश्रम की व्यवस्था स्वयं श्री माँ सारदा देवी ने देख कर प्रसन्नता व्यक्त की थी और कहा था यह ठाकुर का ही कार्य है। आज यह सेवाश्रम प्रायः २५० शय्याओं से युक्त एक प्रख्यात अस्पताल के रूप में रोगी नारायणों की विलक्षण सेवा कर रहा है। स्वामी जी के निर्देशानुसार १९०२ ई० की ४ जुलाई को स्वामी शिवानन्द ने वाराणसी में रामकृष्ण अद्वैत आश्रम की स्थापना की। दुर्भाग्यवश उसी दिन भारत के महान कर्मयोगी, अनन्त करुणामय और वेदान्त मार्तण्ड युगनायक स्वामी विवेकानन्द ने अपनी इहलीला समाप्त कर दी।

स्वामीजी ने ६ नवम्बर १९०१ ई० को एक न्यास (ट्रस्ट) की स्थापना कर अपने ११ संन्यासी गुरु भाइयों को रामकृष्ण मठ (बेलुड़ मठ) का न्यासी (ट्रस्टी) बना दिया था। श्रीरामकृष्ण के मानस पुत्र स्वामी ब्रह्मानन्द इस न्यास के प्रथम महाध्यक्ष निर्वाचित हुए। जब मठ की शाखा प्रशाखाएँ चारों ओर फैल गयी तब कार्यों में समन्वय के उद्देश्य से १९३५ ई० में रूल्स ऐंड रेगुलेशंस ऑफ द रामकृष्ण ऑर्डर १९३५ (रामकृष्ण संघ के नियम अधिनियम १९३५) बनाये गये।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन एक ही संघ के दो अंग हैं। रामकृष्ण मठ का कार्य है आध्यात्मिक कार्य और मठ की देख-भाल का कार्य। और रामकृष्ण मिशन का कार्य है शिक्षा, चिकित्सा, सहायता तथा अन्य दातव्य कार्य एवं वेदान्त के आलोक में श्रीरामकृष्ण द्वारा अनुसरित विश्व भ्रातृत्व प्रसार मूलक कार्यों को रूपायित करना। मठ के ट्रस्टी ही मिशन के शासी निकाय (गवर्निंग बॉडी) का गठन करते हैं तथा श्री रामकृष्ण में विश्वास रखनेवाले ही इसके सदस्य होते हैं। विधानतः भिन्न होने पर भी कायतः दोनों एक ही हैं।

अब तक रामकृष्ण संघ के ग्यारह महाध्यक्ष हो चुके हैं और अभी श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज, ग्यारहवें महाध्यक्ष, के कुशल निर्देशन में संघ सर्वतोभावेन गतिशील है।

सन् १९२६ ई० में श्रीरामकृष्ण संघ ने एक विशाल संन्यासी सम्मेलन स्वामी शिवानन्द के सभापतित्व में आयोजन कर पिछले ४० वर्षों की गतिविधियों का मूल्यांकन कर भविष्य की योजनाएँ वनायी। और सन् १९८० ई० के दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में स्वामी वीरेश्वरानन्द जी की अध्यक्षता में संघ के द्वितीय महाधिवेशन का विराट् आयोजन हुआ। इस अधिवेशन में 'संघ' शब्द को उन्होंने व्यापक अर्थ दिया—"संघ" शब्द का प्रयोग मैं व्यापक अर्थ में कर रहा हूँ। प्रायः इसका प्रयोग केवल संन्यासियों के संगठन को सूचित करने के लिए किया जाता है। मैंने इस शब्द का प्रयोग साधारण भक्तों को भी सम्मिलित करने के लिए किया है।" यह व्यापकता बहुत अर्थपूर्ण है।

रामकृष्ण संघ के गठन में श्री माँ सारदा का योगदान अविस्मरणीय है। वे ही हमारी संघ जननी हैं। उनकी प्रार्थना थी कि उनकी संतानों को वस्त्र, अन्न और आवास का कष्ट न हो। और उनकी प्रार्थना फलीभूत हुई। स्वामीजी की इच्छा थी कि "नारियों के लिए भी इसी प्रकार का एक मठ स्थापित करना होगा।" उनका स्वप्न फलीभूत हुआ १९५४ ई० में—माँ सारदा देवी की जन्म शताब्दी के अवसर पर। स्थापित हुआ—सारदा मठ और स्थापित हुई मिशन की शाखा—रामकृष्ण सारदा मिशन।

बौद्ध, इस्लाम और ईसाई धर्मों को राजनैतिक संरक्षण प्राप्त था। किन्तु रामकृष्ण भावान्दोलन को ऐसा कोई संरक्षण कभी नहीं मिला। जरूरत भी इसकी नहीं पड़ी। तथापि स्वप्नसंभवा रामकृष्ण मिशन आज केवल भारत में ही नहीं सारे विश्व में एक नाम, एक इतिहास, एक प्रतिष्ठान बन गया।

१ मई, १८९७ ई० को वलराम बोस के मकान में जिस रामकृष्ण मिशन का बीजारोपण हुआ था, आज १९९७ ई० में वह विशाल वटवृक्ष बनकर, मठ मिशन की १३४ शाखाओं में फैलकर अखिल विश्व को एक शीतल स्निग्ध छाँह प्रदान कर रहा है। इन शाखा केन्द्रों के द्वारा नर्सरी से डिग्री स्तर तक, शिक्षक प्रशिक्षण, रात्रि पाठशाला, नर्सिंग विद्यालय आदि विभिन्न रूपों के ७१८ स्कूल-कॉलेज एवं शिक्षा केन्द्र संचालित हो रहे हैं। १७८३ शय्याओं से युक्त कुल १३ बड़े-बड़े अस्पताल ७९ बहिरंग औषधालय (out door Dispensaries), १ सेनेटोरियम, १ टी० वी० क्लिनिक, २ मातृ एवं शिशु सेवा केन्द्र, १ प्रशिक्षण केन्द्र तथा १ पशु चिकित्सालय का परिचालन हो रहा है।

राहत कार्यों में मिशन आज सरकारी संस्थाओं से भी अधिक तत्पर एवं क्रियारत है। भारत के गाँवों, वनवासियों, गिरिवासियों एवं पिछड़े वर्ग के इलाकों में भी आज मिशन के नये-नये केन्द्र खुल रहे हैं और वहाँ के निवासियों के सर्वाङ्गीण विकास के कार्य यज्ञीय स्तर पर सम्पादित हो रहे हैं।

पश्चिम बंगाल के कामारपुकुर, जयरामबाटी, बाली दीवानगंज अंचलों के ३१ ग्रामों में, बिहार के राँची केन्द्र के दिव्यायन द्वारा लगभग ३० ग्रामों में, मध्यप्रदेश के नारायणपुर केन्द्र द्वारा हजारों आदिवासियों में कृषि, पशुपालन, शिक्षा, लघु व्यापार, कुटीर उद्योग, चिकित्सा आदि के लिए विशेष प्रशिक्षण एवं ऋण देने का कार्य किया जाता है। इसी प्रकार के कार्य दक्षिण और पश्चिम भारत के विभिन्न केन्द्रों द्वारा भी संचालित होते हैं। पल्ली मंगल, ग्राम क्षेत्र आदि ऐसे ही संस्थान हैं।

आध्यात्मिक भाव प्रसार के लिए कम-से-कम १० केन्द्रों से विभिन्न भाषाओं में धर्म ग्रन्थों और लगभग एक दर्जन पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है। इनके द्वारा सारे विश्व में विद्युत गति से रामकृष्ण भावान्दोलन का प्रचार-प्रसार हो रहा है।

रामकृष्ण संघ ने नये मानव-समाज के निर्माण का, सम्पूर्ण मानवता के सर्वाङ्गीन अभ्युत्थान का जो शिवात्मक संकल्प लिया था, सम्पूर्ण भारत के लिए जिस शान्ति-सुख, समता, वन्धुत्व और एकता तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष का जो एक हिमालयी व्रत लिया था, उसकी पूर्णता और सफलता के लिए हम उसकी ओर आशा और विश्वास भरी आँखों से देख रहे हैं। किन्तु, क्या हम इस महायात्रा के मूक दर्शक ही रहेंगे ? नहीं, हमें इस यात्रा का सहयात्री होना ही होगा, अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार इस महायज्ञ में अपनी समिधा डालनी ही होगी।

रामकृष्ण मिशन आज विश्व-मंदिर में आशा का, विश्वास का, शक्ति और प्रेरणा का अकेला निर्धूम दीप बनकर अपना शीतल आलोक बिखेर रहा है। एक बड़ी अर्थवान् कविता है—

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !
झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी
जब तक लौटे दिन की हलचल
तब तक यह यह जागेगा प्रतिपल
रेखाओं में भर आभाजल
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो !
यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !

मेरे मित्रो, आज विश्व की ऐसी ही दशा है। रात गहरायी हुई है। हवा भी दिशा-भ्रमित हो गयी है। नैतिक मूल्यों के ह्रास से मानव समाज में अंधकार गहराता ही है। और फिर मनुष्य दिग्भ्रमित होकर भटकने लगता है। यही हमारा हाल है। ऐसी स्थिति में जब तक स्वर्णिम प्रभात नहीं आ जाता, सर्वत्र एक अरुण-किरण नहीं फैल जाती, तब तक मन्दिर में दिया को जलाये रखना ही होगा। आज के विश्व-मन्दिर का दीप यही रामकृष्ण मिशन है। जलने दो इसे मौन, नीरव भाव से, अखंड निष्कम्प रूप से—जब तक एक नया प्रभात नहीं आ जाता, एक नया विश्व नहीं गठित हो जाता।

भगवान हम सब को ऐसी प्रेरणा दें कि श्रीरामकृष्ण मिशन के विगत सौ वर्षों से प्रज्वलित दीप को आनेवाले सहस्र वर्षों तक और भी प्रखरतर करने के लिए हम अपना स्नेह अर्पित करते रहें—निष्काम और अनासक्त भाव से। जय श्रीरामकृष्ण ! जय श्री माँ सारदा ! जय स्वामी जी !

आशीर्वाणी

—स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

[स्वामीजी के भारत-प्रत्यावर्तन एवं कलकत्ता- प्रत्यावर्तन की शतवर्ष-पूर्ति के उपलक्ष्य में पिछले २३ फरवरी, १९९७ को उत्तर कलकत्ता के देशबन्धु पार्क में रामकृष्ण मिशन शतवर्ष उद्यापन समिति की प्रचेष्टा एवं कलकत्ता के नागरिकों की सहायता से आयोजित जनसभा में पूज्यपाद महाराज ने जो आशीर्वाणी भेजी थी उसी का यह हिन्दी रूपान्तर है। रूपान्तरकार हैं बेलुड़मठ में कार्यरत स्वामी नित्यज्ञानानन्द सं०]

इस युग में रामकृष्ण-विवेकानन्द का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है। उनका जीवन तथा उपदेश न केवल भारतवर्ष के लिए उपयोगी था, बल्कि सारे संसार के कल्याण का पथप्रदर्शक था। उनका समग्र जीवन परहित के लिए समर्पित था। दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के चरणों तले बैठकर विवेकानन्दजी ने जो शिक्षा पायी थी उसीको उन्होंने परवर्ती जीवन में सारे विश्व में दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित किया। श्रीरामकृष्ण के शरीर-त्याग के बाद समग्र भारत में भ्रमण करने के दौरान भारतमाता की दैन्य-दुर्दशाग्रस्त अवस्था ने एवं कुसंस्कारों से आच्छन्न धर्म के विकृत रूप ने उनके मन को व्यथित कर दिया था। कन्याकुमारी के उस अंतिम शिलाखण्ड पर ध्यानावस्था में उन्होंने भारत के गौरवशाली अतीत को, हीनदशा-प्राप्त वर्तमान को तथा संभावनाओं से पूर्ण भविष्यत् को प्रत्यक्ष किया था। यहीं पर उन्हें शिकागो के धर्म-महासभा में सहभागी होने की प्रेरणा मिली। उस महासभा में प्रथम दिन की उपस्थिति से ही वे एक श्रेष्ठ पुरुष के रूप में विख्यात हुए। वहाँ उन्होंने केवल वेदान्त-धर्म का ही प्रचार नहीं किया अपितु सभी धर्मों की दुर्बलता को दूर करते हुए, उनके पारस्परिक समन्वय-साधन के द्वारा विश्व में शाश्वत शांति के पथ का निर्देश किया था। उन्होंने कहा था—"विवाद नहीं, सहयोग; विनाश नहीं, परस्पर भाव-ग्रहण; मतों का झगड़ा नहीं, समन्वय और शांति।"

समस्त पश्चिमी देशों का भ्रमण कर स्वामीजी ने वहाँ धनप्राचुर्य के साथ आध्यामिक दैन्य को देखा था। जिस तरह भारत में अन्न का अभाव है, उसी तरह पाश्चिमात्यों में सच्ची आध्यात्मिकता का अभाव है। पाश्चिमात्यों का ज्ञान-विज्ञान और प्रौद्योगिकी विद्या मनुष्य को ऐहिक सुख-स्वच्छन्दता भले ही प्रदान कर सके, पर यदि उसका यथोचित उपयोग न हो तो वही सम्पूर्ण विश्व और मानव-सभ्यता के विनाश का कारण बनेंगे। इसके लिए आवश्यकता है पर्याप्त विचारशक्ति सम्पन्न मनुष्य की जो इस प्रौद्योगिकी विद्या का यथोचित कल्याणकारी उपयोग कर सके। केवल सच्चा धर्म ही मनुष्य को वैसी चेतना प्रदान कर सकता है। इसीलिए स्वामीजी प्राच्यों के उदार धर्मभाव को पाश्चात्यों के कल्याण हेतु प्रयुक्त करना चाहते थे, प्राच्यों की आध्यात्मिक सम्पद् के साथ पाश्चात्यों की ऐहिक शिक्षा-संस्कृति का समन्वय करना चाहते थे। भारत पश्चिम को अपना आध्यात्मिक ऐश्वर्य देकर बदले में उससे ऐहिक सम्पद्, यन्त्रविद्या तथा विज्ञान की शिक्षा लेगा। इन दोनों का समन्वय केवल इन दोनों सभ्यताओं को ही समृद्ध नहीं करेगा बल्कि एक नयी सभ्यात

का, नयी संस्कृति का, नये अध्यात्मवाद का निर्माण होगा जो संसार में शांति और समृद्धि लाएगा। श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को अपनी सारी शक्ति प्रदान कर उनमें जो जागृति लायी थी उसी का प्रथम उन्मेष मानो इस विश्वमहासभा में हुआ था। स्वामीजी ने भारत के शाश्वत शांति के संदेश का प्रचार किया था, भारत की चिरन्तन परम्परा और महिमा को अभिव्यक्त किया था। स्वामीजी के इस कल्पनातीत साफल्य ने भारतवर्ष के लोगों के भीतर एक शक्तिमय अनुभूति ला दी। इस अनुभूति ने निद्रित भारत को एक नयी प्रेरणा दी, उसके आत्मविश्वास का एक नया पथ उद्घाटित कर दिया। स्वामीजी के भारत में पुनरागमनने इस प्रेरणा को और भी गतिशील बनाते हुए, समस्त जड़ता को दूर कर, राष्ट्र को नये भारत के निर्माण के महामन्त्र से जागृत कर दिया। वस्तुतः शिकोगो धर्म-सभा में उनके अत्यधिक साफल्य तथा यूरोप और अमरिका में उनके बलशाली प्रभाव से भारत-वासियों के मन में जो गर्व और आत्मविश्वास संचारित हुआ था उसी के फलस्वरूप भारत में वास्तविक राष्ट्रीय जागरण का प्रारम्भ हुआ था—पराधीन भारत ने स्वतन्त्रता का स्वप्न देखना शुरू किया था। स्वामीजी कोलम्बो से दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए १९ फरवरी, १८९७ को कलकत्ता लौटे। उस काल के अपने भाषणों में उन्होंने भारतवासियों को उत्साहित और निज महिमा में प्रतिष्ठित करने हेतु अग्निमयी भाषा में हमारे धर्मगत कुसंस्कारों एवं दुर्बलताओं का धिक्कार किया। देश के पतन का प्रमुख कारण है चारों ओर लगा हुआ कुसंस्कारों का बाड़ा-जाल। औरों को घृणा कर, उनसे दूर रहकर स्वयं की उन्नति कभी संभव नहीं हो सकती। स्वामीजी विभिन्न राष्ट्रों के बीच आदान-प्रदान, भाव-विनिमय और सहयोगिता के आदर्श में विश्वास रखते थे। इसके बगैर किसी के लिए भी बचे रहना या उन्नति करना सम्भव नहीं है। वे कहते थे—"आदान-प्रदान ही अभ्युदय का मूलमन्त्र है।" हमलोग बहुत कुछ सोचते तो हैं परन्तु उसे कार्य में लाने का कोई प्रयास नहीं करते; उलटा दूसरों का अनुकरण करके श्रेष्ठ होने की चेष्टा करते हैं। स्वामीजी ने इस परानुकरण को तीव्र भाषा में धिक्कारा था।"

हमारा धर्म उदार है इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु वस्तुतः सामाजिक जीवन में महान् स्वार्थ-बुद्धि है। जात-पात तथा दरिद्रों के प्रति सबलों के अत्याचार ने सामाजिकजीवन को युगों से कलुषित कर रखा है। श्रीरामकृष्ण ने कहा था—"शिव ज्ञान से जीव सेवा।" रामकृष्ण मिशन की प्रतिष्ठापना के द्वारा स्वामीजी ने उनके इसी सन्देश को कार्य में परिणत किया। स्वामीजी की धर्मभावना ने यहाँ एक नयी दिशा खोल दी है। वे जानते थे—'दरिद्र व्यक्ति की झोपड़ी में ही राष्ट्र-जीवन स्पन्दित हो रहा है।' परिव्राजक-जीवन में उच्च-नीच, शिक्षित-अशिक्षित सभी स्तरों के मनुष्यों से मिलकर उन्होंने यह जान लिया था। भारत को यदि जगाना हो तो सर्वप्रथम इस दारिद्रय, अशिक्षा, कुशिक्षा और धार्मिक कुसंस्कारों को समूल उखाड़ फेंकना होगा और जिन्होंने अपने रक्त-सिंचन से देश की रक्षा की है किन्तु युगों से जो केवल अवहेलना तथा लांछना सहकर जी रहे हैं, पहले उनके प्राणों में सुशिक्षा द्वारा शक्ति, साहस और आत्मविश्वास जगाना होगा जिससे वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें। स्वामीजी जानते थे कि उनकी उन्नति से ही भारत की सर्व प्रकार से उन्नति होगी। स्वामीजी के स्वदेश आगमन के सौ वर्ष बाद भारत के कई क्षेत्रों में प्रगति करने के बावजूद हमलोग आज भी कुछ मामलों में आत्म-निर्भर नहीं हो पाये हैं। अशिक्षा और कुशिक्षा का प्रभाव आज भी समाज को कलुषित कर रहा है।

आज भी समाज को कलुषित कर रहा है। आज भी विभिन्न देशों के बीच संघर्ष, रक्तपात, हिंसा एवं विच्छिन्नतावाद हमलोगों को भयभीत-संत्रस्त कर रहे हैं। इसीलिए हिंसा और द्वेष से उन्मत्त इस संसार में शांति लाने हेतु हमें स्वामीजी की विशेष आवश्यकता है। उनके जीवन का आदर्श ही मानव को मुक्ति का सही पथ दिखायेगा। हममें जो मलिनता और दुर्बलता है उसे दूर करना होगा और अन्य संस्कृतियों में जो श्रेष्ठ एवं उपयुक्त तत्त्व हैं उनको अवश्य ग्रहण करना होगा। इन दोनों के सम्मिलन से ही राष्ट्र की उन्नति होगी और महिमान्वित भारत का पुनराविर्भाव संभव होगा।

स्वामीजी कलकत्ते के युवकों पर विशेष भरोसा रखते थे और उनका विश्वास था कि आशिष्ठ, दृढ़िष्ठ, बलिष्ठ, मेधावी युवकों के द्वारा ही मातृभूमि का पुनर्गठन संभव होगा। सौ वर्ष पूर्व कलकत्ता—अभिनन्दन के उत्तर में स्वामीजी ने कहा था—"हे कलकत्तावासी युवकवृन्द ! हृदय में इस उत्साह की ज्वाला को जलाकर जाग्रत हो जाओ।···भय ही समस्त जगत् के दुःख का मूल कारण है। भय ही सबसे बड़ा कुसंस्कार है—निर्भीक होते ही एक क्षण में ही स्वर्ग भी आविर्भूत हो सकता है। अतएव उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत—उठो, जागो और जबतक अभीप्सित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती तबतक उस ओर सतत् आगे बढ़ना मत छोड़ो। वे मानते थे कि कलकत्ते से ही सैकड़ों-हजारों ऐसे युवकों का आविर्भाव होगा जो भारतात्मा की अमर वाणी का समग्र विश्व में प्रचार करेंगे। जगत्-मंच पर फिर भारत श्रेष्ठ आसन पर आरूढ़ होगा। स्वामीजी ने दिव्यदृष्टि से देखा था—'भारत फिर उठेगा। किन्तु जड़ की शक्ति से नहीं, चैतन्य की शक्ति से, विनाश का विजयध्वज लेकर नहीं, शांति और प्रेम का ध्वज लेकर। स्वामीजी का शुभाशीर्वाद सभी के ऊपर बरसे और वे हमारे मन में वह शक्ति और साहस दें जिससे उनके निर्देश को कार्य में परिणत कर हम नये समृद्ध भारत का निर्माण कर सकें।

कलकत्ता के देशबन्धु पार्क में स्वामीजी के भारत-प्रत्यार्तन एवं कलकत्ता-प्रत्यावर्तन की शतवर्ष-पूर्ति के उपलक्ष्य में एक समावेश का आयोजन किया गया है—यह जानकर मैं बहुत आनन्दित हुआ हूँ। यह समावेश सम्पूर्ण रूप से सफल हो—यही मेरी प्रार्थना है। देश के लोग, विशेषकर देश के युवक-सम्प्रदाय इस समावेश में स्वामीजी के जीवन एवं उपदेश से प्रेरणा ग्रहण करेंगे—यह विश्वास करता हूँ।

समवेत सभी को मेरी आन्तरिक शुभेच्छा।

समग्र संसार में मठों की स्थापना करनी होगी। किसी देश में आध्यात्मिक भावों के प्रचार की आवश्यकता है तो किसी देश में कुछ इहलौकिक सुख-स्वच्छन्दता की आवश्यकता है।······भारतवर्ष के लिए हमारा सबसे प्रथम तथा मुख्य कर्तव्य है—निम्न श्रेणी के लोगों में विद्या और धर्म का प्रचार करना। रोटी का प्रश्न हल किये बिना भूखे मनुष्य धार्मिक नहीं बनाये जा सकते। यह एकदम असम्भव है। अतएव, लोगों को रोटी का प्रश्न हल करने का नया मार्ग बताना सबसे मुख्य और सबसे पहला कर्त्तव्य है।"

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द का स्वदेश प्रत्यावर्तन

—श्रीसत्येन्द्रनाथ मजुमदार

(आज से ठीक सौ वर्ष पहले विश्व विजयी स्वामी विवेकानन्द ने स्वदेश प्रत्यावर्तन किया था। शिकागो धर्ममहासभा में ऐतिहासिक सफलता के पश्चात् दीर्घ चार वर्षों तक पाश्चात्य देशों में वेदांत-धर्म की विजय-वैजयंती लहराकर १६ दिसम्बर १८९६ को स्वामीजी लन्दन से स्वदेश की ओर चल पड़े। तत्कालीन भारतवर्ष के कोलम्बो में उनका प्रथम पदार्पण हुआ था। वहाँ से मद्रास होते हुए कलकत्ता महानगरी में उनका प्रत्यावर्तन हुआ था। इस अवसर पर भारतवर्ष ने अपनी विजयी वीर-संतान का कैसा भव्य स्वागत, कैसी अतुलनीय अभ्यर्थना की थी—इसका सुन्दर चित्रण इस लेख में किया गया है।)

१५ जनवरी को सूर्योदय के साथ-ही-साथ सालोन की श्यामल तट भूमि दृष्टिगोचर हुई। पीली बालू से पूर्ण समुद्रतट की सुवर्णोज्ज्वल प्रभा,-वायु के झकोरे से हिलने वाले नारिकेल वृक्षों के शीर्षों का गहरा हरा रंग देख स्वामी विवेकानन्द आनन्द से प्रफुल्लित हो उठे। जहाज धीरे-धीरे कोलम्बो बन्दरगाह में प्रविष्ट होकर खड़ा हुआ। तरंगों की उच्च कल्लोल ध्वनि के साथ जहाज की गम्भीर वंशी-ध्वनि ने सम्मिलित होकर विवेकानंद की आगमन-वार्त्ता घोषित की।

स्वामीजी स्वदेश लौट रहे हैं, इस समाचार का प्रचार होते ही भारतवर्ष की जनता उनकी सादर अभ्यर्थना के लिए प्रस्तुत हो गई। सीलोन व मद्रास प्रेसीडेन्सी के प्रधान-प्रधान नगरों की प्रमुख जनता ने अपने यहाँ स्वागत-समितियाँ तैयार कीं। यह समाचार पाकर कि स्वामीजी कोलम्बो नगर में उतरेंगे उनके दो गुरुभाई तथा कुछ मद्रासी शिष्य पहले से ही वहाँ पर पहुँच गये। कोलम्बो का हिन्दू समाज स्वामीजी की प्रथम अभ्यर्थना करने का गौरवमय अधिकार पाकर उत्साह के साथ तैयारी करने लगा, परन्तु जिनके लिए यह सब था उन स्वामीजी को इस बात का अनुमान ही न था कि किस उत्सुकता से देश उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। जिस समय उनकी मातृभूमि नवीन उत्साह के उच्छ्वास से मुखरित हो उठी थी—उस समय वे जहाजों के छोटे से कमरे में चुपचाप बैठे भारत की वर्तमान व भविष्य की समस्याओं के समाधान में लगे हुये थे। नवीन भारत के पुनरुत्थान के लिए वे जिस सन्देश का प्रचार करने के लिए स्थिर संकल्प किये बैठे हैं, जिस शिक्षा-दीक्षा के द्वारा राष्ट्रीय जीवन को फिर से रसमय, जाग्रत व महिमामय बना देने का उन्होंने संकल्प किया है, उसे जनसाधारण स्वीकार करेगा अथवा नहीं—यह सारी चिन्ता करते हुये वे सन्दिग्ध चित्त से कोलम्बो बंदरगाह में उतरे।

उनके गैरिक पगड़ी द्वारा मण्डित मस्तक को देखते ही समुद्र-तट पर एकत्रित विराट जनसमूह आनन्द से जयध्वनि कर उठा। उस समय संध्या नहीं हुई थी—अस्ताचलगामी सूर्य की पीताभ रक्तिम रश्मियों से दीप्त संन्यासी विस्मयविमूढ़ की तरह खड़े रहे। जिस समय कोलम्बो के हिन्दू समाज के प्रतिनिधि के रूप में माननीय कुमार-स्वामी महोदय ने कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ अग्रसर होकर उन्हें मनोहर पुष्पमाल्य से विभूषित किया—तब उन्होंने समझा कि उस विराट अभ्यर्थना का आयोजन उन्हीं के लिए है। स्वामीजी ने दो घोड़ों की गाड़ी पर बैठ नगर में प्रवेश

किया। फूल, पत्ते व पल्लवों द्वारा सुशोभित फाटकों को लाँघ कर जुलूस धीरे-धीरे सजे हुए राजपथ पर से होता हुआ 'दारुचीनी उद्यान' के सामने एक विराट मण्डप के नीचे आ पहुँचा। स्वामीजी के गाड़ी से उतरने के साथ ही सैकड़ों व्यक्ति उनकी पद-धूलि लेने लगे। माननीय कुमारस्वामी ने उनके सामने प्रणत होकर अभिनन्दन-पत्र समर्पण किया।

उपस्थित जनता के उत्साहपूर्ण आनन्द व कोलाहल के बीच स्वामीजी अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देने के लिए खड़े हुये। प्रसंगवश उन्होंने कहा, "मैं कोई महाराजा अथवा धनकुबेर या प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ नहीं हूँ—निर्धन भिक्षाजीवी संन्यासी मात्र हूँ। आप लोगों ने मेरी जो सादर अभ्यर्थना की है, इससे मैं समझ रहा हूँ कि हिन्दू जाति अभी तक अपनी आध्यात्मिक सम्पत्ति को खो नहीं चुकी है, नहीं तो एक संन्यासी के प्रति वह इतनी श्रद्धा-भक्ति का प्रदर्शन क्यों करती? अत: हे हिन्दुओ, अपनी जातीय जीवन की इस विशेषता को न खोओ। नाना प्रकार की विरुद्ध स्थिति के बीच में भी धर्म के आदर्श पर दृढ़ता के साथ डटे रहो।"

इसके बाद स्वामीजी को विश्रामगृह में ले जाया गया। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा, कि जो लोग स्थानाभाव के कारण मण्डप में उनका दर्शन नहीं कर सके थे वे गृह-द्वार पर आकर एकत्रित हुये हैं। स्वामीजी ने बरामदे में उनके सम्मुख खड़े होकर मृदु हास्य से नमस्कार किया। सभी लोग आग्रह और भक्ति के साथ उनकी पद-धूलि लेने लगे। स्वामीजी ने 'नारायण' कह कर सबको आशीर्वाद दिया।

१६ जनवरी को तीसरे प्रहर उन्होंने फ्लोरल हॉल में एक भाषण दिया। पाश्चात्य देश से लौटने के बाद यही उनका सर्वप्रथम भाषण हुआ। भाषण का विषय था—"पुण्यभूमि भारतवर्ष।"

स्वामीजी के प्रियतम शिष्य मि० गुडविन के, जो संकेत लिपि लिखने में प्रवीण थे, अथक परिश्रम से ही हमने आचार्य देव के व्याख्यानों को पुस्तक के रूप में प्राप्त किया है। मि० गुडविन सदैव छाया की तरह श्री गुरुदेव के साथ रहा करते थे—स्वामीजी के भाषणों को पढ़ते समय पुण्य-स्मृति से हृदय स्वत: ही कृतज्ञता से परिपूर्ण हो उठता है। श्रीरामकृष्ण मिशन द्वारा प्रकाशित 'भारत में विवेकानन्द' नामक पुस्तक में स्वामीजी के इस देश में दिये हुये भाषणों को लोगों ने पढ़ा ही है। अत: हम केवल आवश्यकतानुसार स्थान स्थास पर उसका उल्लेख मात्र ही करेंगे।

दूसरे दिन का अधिकांश समय आचार्य गुरुदेव ने दर्शकों के साथ धर्मचर्चा में बिता दिया। तीसरे प्रहर में वे स्थानीय शिवमन्दिर का दर्शन करने गये। रास्ते में अगणित व्यक्ति उन्हें फूल, फल, माला आदि का उपहार देने लगे। ऊँचे मकानों की अट्टालिकाओं से नारीवृन्द पुष्प व गुलाबजल की वर्षा करने लगे। मन्दिर के दरवाजे पर उपस्थिति होने के साथ ही 'जय महादेव' की ध्वनि के साथ एकत्रित जनता ने उनकी अभ्यर्थना की। श्री मन्दिर के दर्शन व प्रदक्षिणा के पश्चात् पुरोहित के साथ थोड़ी देर वार्तालाप करके वे अपने निवासस्थान पर लौट आये। कुछ शास्त्रज्ञ ब्राह्मण पण्डित उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। रात्रि के करीब ढाई बजे तक स्वामीजी ने उनके साथ शास्त्रचर्चा की और दूसरे दिन प्रात:काल कोलम्बो के पब्लिक हॉल में वेदान्त-दर्शन पर उन्होंने एक विस्तृत भाषण दिया। इस सभा में कुछ भारत-वासी यूरोपीय पोशाक पहन कर आये थे। चाल-चलन व भावभंगी में भी उन्हें अंग्रेजों का अनुकरण की प्रवृत्ति को छोड़ अपनी जातीयता को अपनाने तथा बनाये रखने का उपदेश दिया।

१९ जनवरी को उन्होंने कोलम्बो से स्पेशल ट्रेन द्वारा काण्डी की ओर यात्रा की। इससे पूर्व स्वामीजी का विचार कोलम्बो से जहाज द्वारा मद्रास पहुँचने का था, परन्तु सीलोन व दक्षिण के अनेक स्थानों से लगातार इतने आग्रहपूर्ण एवं आह्वानसूचक तार आने लगे कि उन्होंने उक्त संकल्प छोड़ दिया और अन्त में रेल द्वारा ही उन्होंने मद्रास जाने का निश्चय किया।

काण्डी में हिन्दू समाज की ओर से दिये गये अभिनन्दन-पत्र का संक्षेप में उत्तर देकर स्वामीजी जाफना की ओर अग्रसर हुये। बौद्ध युग की प्राचीन कीर्तियों के लिए विख्यात नगरी अनुराधा-पुरम् में स्वामीजी ने वहाँ के निवासियों के अनुरोध से 'उपासना' के सम्वन्ध में एक भाषण दिया। वुद्ध गया के वोधि द्रुम की शाखा से उत्पन्न महान प्राचीन वट वृक्ष के नीचे सभा का आयोजन हुआ था। अनुराधापुरम् से जाफना १२० मील दूर है। स्वामीजी अपने साथियों के साथ बैलगाड़ी पर सवार होकर धीरे-धीरे जाने लगे। प्रतिदिन रास्ते में गाँवों के सैकड़ों हिन्दू व बौद्ध उनके दर्शन के लिए खड़े रहते थे। स्वामीजी को आश्चर्य हुआ कि उनके शिकागो-भाषण की सफलता का समाचार सीलोन गाँवों में रहने वाले किसानों तक को ज्ञात है।

संध्या के समय स्वामीजी जाफना पहुँचे। खूब सजे-सजाये राज-पथ के बीच में से धीरे-धीरे जुलूस आगे वढ़ा। वहाँ के हिन्दू कॉलेज के प्रांगण में एक सुन्दर मण्डप तैयार किया गया था। स्वामीजी को वहाँ पर ले जाया गया। करीब पन्द्रह हजार व्यक्ति जुलूस में सम्मिलित हुये थे। नागरिकों का आनन्द व उत्साह अपार था। जाफना में अभिनन्दन-पत्र का संक्षिप्त उत्तर देकर दूसरे दिन आचार्य देव ने वेदान्त के सम्बन्ध में भाषण दिया। सीलोन का भ्रमण समाप्त हुआ। जाफना से एक स्टीमर किराये पर लेकर स्वामीजी ने अपने शिष्यगण व गुरुभाई स्वामी निरंजनानन्द जी के साथ भारतवर्ष की ओर यात्रा की। पहले से ही समाचार पाकर रामनद के राजा भास्कर वर्मा बहादुर तमाम जनता के साथ पाम्बान में उपस्थित हुये। विराट जनसमूह समुद्र-तट पर अधीर होकर स्वामीजी की प्रतीक्षा करने लगा। स्टीमर पर से किनारे पर उतर कर स्वामीजी राजा बहादुर की सुसज्जित 'वोट' पर चढ़े।

'प्रचारशील हिन्दू' धर्म के सर्वप्रथम प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द के भारतीय भूमि पर शुभ पदार्पण करने के साथ ही सम्मिलित समस्त जन-समूह एक ध्वनि से उनकी जय जयकार कर उठा। रामनद के नरेश भूमि पर लोट कर स्वामीजी के श्रीचरणों में नतमस्तक हुये और उनके साथ ही अन्य सहस्र सहस्र मस्तक भूमि को स्पर्श करने लगे। संध्या के लाल व घूसर आकाश के नीचे सहस्र व्यक्तियों की इस स्वाभाविक उत्कट भक्ति से पूर्ण यह महिमामय दृश्य भारत के इतिहास में अपना अपूर्व स्थान रखता है। आचार्य देव ने राजाजी तथा आसपास के अन्य सज्जनों को भूमि पर से उठा कर आशीर्वाद दिया। समुद्र-तट पर सुन्दर शामियाने के नीचे नागलिंगम पिल्ले महोदय ने पाम्बान के अधिवासियों की ओर से स्वामीजी को एक अभिनन्दन-पत्र दिया। रामनद नरेश व एम० के० नायर महोदय के भावपूर्ण भाषणों के बाद स्वामीजी ने पाम्बाननिवासियों को धन्यवाद देकर मर्मस्पर्शी भाषा में एक छोटा-सा भाषण दिया। अन्त में उन्होंने कहा, "रामनद नरेश ने मुझ से जो स्नेह दिखाया है, इसके लिए उनके प्रति कृतज्ञता भाषा द्वारा प्रकट करने में मैं असमर्थ हूँ। और यदि मेरे द्वारा थोड़ा भी सत्कार्य हुआ है तो उसके लिए भारतवर्ष इस महापुरुष का ऋणी है, क्योंकि मुझे शिकागो भेजने की कल्पना इन्हीं के मन में पहले पहल उठी थी। उन्होंने ही

मेरे मस्तिष्क में यह भावना प्रविष्ट की थी और उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए मुझे बारम्बार उत्तेजित भी किया था। इस समय वे मेरे पास खड़े होकर अपने स्वाभाविक उत्साह के साथ और भी अधिक कार्य की आशा कर रहे हैं। यदि इनकी तरह और कुछ नरेश हमारी प्यारी मातृभूमि के कल्याण के लिए आगे बढ़ कर राष्ट्रीय उन्नति की चेष्टा करें तो बहुत ही अच्छा है।"

सभा समाप्त होने पर स्वामीजी को उनके लिए निश्चित निवास-स्थान पर ले जाया गया। राजा जी के आदेशानुसार गाड़ी से घोड़ों को खोल दिया गया और उपस्थित व्यक्तिगण, यहाँ तक कि स्वयं राजा बहादुर भी उस गाड़ी को खींच कर ले जाने लगे। दूसरे दिन स्वामीजी प्रसिद्ध श्री रामेश्वर मन्दिर का दर्शन करने गये। कोई पाँच वर्ष पूर्व इसी स्थान पर स्वामी ने अपने परिव्राजक व्रत का उद्यापन किया था, उस समय वे एक अपरिचित संन्यासी मात्र थे। गाड़ी जब मन्दिर के सामने पहुँची तो हाथी, ऊँट, घोड़े तथा मन्दिरों के चिन्ह से युक्त झण्डों व संगीत-मण्डली के साथ एक विराट् जुलूस ने स्वामीजी की अभ्यर्थना की। उन्होंने मन्दिर में प्रवेश कर सहस्र स्तम्भों से सुशोभित विराट् भवन व विशाल मन्दिर के अपूर्व कारुकार्यसमूह का दर्शन किया। देव-दर्शन समाप्त होने पर स्वामीजी को मन्दिर के बहुमूल्य मणि, मुक्ता, हीरक आदि दिखाये गये। अन्त में उनसे भाषण देने के लिए प्रार्थना की गई। स्वामीजी ने अंग्रेजी भाषा में भाषण दिया। उसके बाद श्री नागलिंगम ने तामिल भाषा में उसका अनुवाद करके उसे जनसाधारण को समझा दिया। स्वामी जी ने भारत के अन्यतम पवित्र धाम के मन्दिर के प्रांगण में खड़े होकर घोषित किया—"यत्र जीव तत्र शिव।" इस महामंत्र में अनुप्राणित होकर प्रत्येक नर-नारी की सेवा में अग्रसर होना ही ही वास्तव में शिव-भक्ति है। जो व्यक्ति केवल बैठे-बैठे उनके अंग-प्रत्यंग, आँख, कान, नाक आदि की अपूर्व सुन्दरता की प्रशंसा करते हुये स्तोत्रों का पाठ करके केवल प्रतिमा की ही सेवा में लगे रहते हैं, वे प्रवर्तक मात्र हैं, उनकी भक्ति परिपक्व नहीं हुई है।

उस दिन स्वामीजी के शुभागमन के उपलक्ष्य में हजारों दरिद्र-नारायणों को बड़े आनन्द से भोजन कराया गया। वस्त्र व धन बाँटे गये। भारतीय भूमि के जिस स्थान पर स्वामीजी ने पहले-पहल पैर रखा था, उस पुण्य भूमि पर भक्तिमान रामनद नरेश ने चालीस फीट ऊँचा एक स्मृति-स्तम्भ बनवा दिया। उस स्तम्भ पर लिखा है—

"सत्यमेव जयते—जिस स्थान पर महात्मा स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य जगत में वैदान्तिक धर्म की विजय-वैजयन्ती को प्रोत्थित कर अद्वितीय दिग्विजय के बाद अपने अंग्रेज शिष्यों के साथ भारतीय भूमि पर अपने पवित्र पदपंकजों को पहले पहल रखा था उस पुण्य स्थान को चिन्हित करने के उद्देश्य से यह स्मृतिस्तम्भ रामनद नरेश राजा भास्कर सेतुपति द्वारा २६ जनवरी सन १८९७ ई० को निर्मित किया गया।"

वहाँ से स्वामीजी ने रामनद की ओर यात्रा की। राजा बहादुर की व्यवस्था के अनुसार रामनद के निवासियों ने पहले से ही यथायोग्य अभ्यर्थना के लिए तैयारी की थी। स्वामीजी के बोट से हृद के तट पर उतरते ही उनके सम्मान के लिए राजभवन से तोपों की ध्वनि होने लगी। नगर के सुसज्जित राजपथ पर से होकर राजा बहादुर की गाड़ी पर चढ़े हुये स्वामीजी धीरे-धीरे जाने लगे। राजा बहादुर, राजभ्राता, तथा अन्य विशिष्ट कर्मचारीगण उनके पीछे-पीछे पैदल चलने लगे। अंग्रेजी व देशी बाजे एक तान से बजने

लगे। उनके पहुँचने के पहले से ही अभ्यर्थना-मण्डप भक्तों तथा दर्शकों से भर चुका था। भक्तों के साथ स्वामीजी को आते देख दर्शकगण ने जय-ध्वनि के साथ उनका स्वागत किया। यथोचित भाषण देकर राजा बहादुर ने सभा का उद्‌घाटन किया। उसके बाद राजा बहादुर के आदेशानुसार उनके भाई राजा दिनकर वर्मा सेतुपति ने अभिनन्दन-पत्र पढ़ कर सुनाया। अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने एक विस्तृत भाषण दिया। राजा बहादुर ने प्रस्ताव किया कि स्वामीजी के शुभागमन के उपलक्ष्य में मद्रास दुर्भिक्ष-भंडार के लिए जनसाधारण से चंदा इकट्ठा कर भेजा जाय। उक्त प्रस्ताव बड़े हर्ष के साथ सर्व सम्पति से स्वीकृत हुआ और उसके बाद सभा विसर्जित हुई।

परमकुड़ी, मनमदुरा, मदुरा, त्रिचनापल्ली व तंजोर आदि नगरों में अनेक प्रकार से अभिनंदित होकर स्वामीजी ने कुम्भकोणम में पदार्पण किया। कुम्भकोणमनिवासी हिन्दुओं ने भी स्वामीजी को दो अभिनन्दन-पत्र दिये। अभिनन्दन के उत्तर में स्वामीजी ने वेदान्त पर एक विवेचना-पूर्ण भाषण दिया। इस विचार से कि मद्रास में जाकर उन्हें बहुत ही अधिक परिश्रम करना पड़ेगा, उन्होंने कुम्भकोणम में तीन दिन विश्राम किया और उसके बाद वे मद्रास की ओर रवाना हुये।

विवेकानन्द मद्रास आ रहे हैं, यह समाचार पाकर मद्रास के निवासी उनकी सादर अभ्यर्थना के लिए पहले से ही तैयार हो गये। माननीय न्यायमूर्ति सुब्रह्मण्य अय्यर महोदय के नेतृत्व में अभ्यर्थनासमिति संगठित हुई। प्रत्येक भवन के शिखर पर रंग-बिरंगे झंडे फहरने लगे, राजपथों को बड़े-बड़े तोरणों से सुसज्जित किया गया तथा सारी मद्रास नगरी अपूर्व रूप से सुशोभित होकर स्वामीजी की सादर अभ्यर्थना के लिए उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगी। छः फरीवरी को प्रातःकाल होते ही नगरनिवासी दल के दल रेलवे स्टेशन की ओर चल पड़े। प्लेटफार्म पर ट्रेन के आते ही सहस्र-सहस्र कण्ठों से निकली हुई जय-ध्वनि ने आकाश को विदीर्ण कर दिया। पुण्यमूर्ति विवेकानन्द के गाड़ी से उतरते ही अभ्यर्थना-समिति के सदस्यों ने आगे बढ़ कर उन्हें पुष्प-मालाओं से विभूषित किया। स्वामीजी कुछ मिनट उपस्थित मान्य व्यक्तियों के साथ वार्तालाप करने के बाद गाड़ी पर चढ़े। न्यायमूर्ति सुब्रह्मण्य अय्यर, स्वामी निरंजनानन्द व स्वामी शिवानन्द उसी गाड़ी में स्वामीजी के साथ बैठे और गाड़ी धीरे-धीरे अटर्नी बिलीग्रामी अयंगर महोदय के 'कैसल कर्नान' नामक प्रासादोपम भवन की ओर बढ़ी। थोड़ी दूर बढ़ने पर अनेक उत्साही युवकों ने गाड़ी से घोड़ों को अलग कर दिया और स्वयं खींच कर ले जाने लगे। रास्ते में स्वामीजी के ऊपर लगातार फूलों की बर्षा होती रही। सैकड़ों स्त्री-पुरुष बड़ी श्रद्धा के साथ उन्हें नारियल तथा अन्य फलों का उपहार देने लगे। कोई-कोई भद्र महिलाएँ राजपथ पर खड़ी होकर पंचप्रदीपों से उनकी आरती उतारने लगीं तथा श्रद्धा व भक्ति के साथ पुष्प व चन्दन द्वारा उन्हें अर्घ्यदान देने लगीं। इस अपूर्व अभ्यर्थना के बीच एक बड़ा मधुर दृश्य हुआ—एक उच्च वंश की वृद्ध महिला कम्पित पद से जनता को चीरती हुई गाड़ी के पास आ पहुँची। स्वामीजी का दर्शन करते ही वह भाव से गद्‌गद हो गई, उसकी दोनों आँखों से आनन्द के आँसू निकल पड़े, क्योंकि उसका स्थिर विश्वास था कि स्वामीजी साक्षात शिवजी के अवतार हैं, अतः उनके दर्शन करने के साथ ही उसके सभी पाप व मलिनताएँ लुप्त हो गई—अब इसमें सन्देह नहीं कि अन्त में वह शिवलोक को

प्राप्त होगी। इस पवित्र दृश्य को देख कर सभी उपस्थित व्यक्ति विस्मित हो गये।

स्वामीजी के मद्रास में शुभागमन के उपलक्ष्य में हिन्दुओं में जो उत्साह व उमंग देखा गया था उसके सम्बन्ध में विख्यात 'हिन्दू' पत्र ने लिखा था,—

'आज रेलवे स्टेशन पर स्वामी विवेकानन्द की अभ्यर्थना के लिए उपस्थित विराट जनसमूह के उत्साह व धर्मानुराग का उचित रूप से वर्णन करना असम्भव है। मद्रास के प्रमुख व्यक्तियों ने उपस्थित होकर विश्वविख्यात सन्यासी का जो गौरवपूर्ण स्वागत किया है, उससे इस महादेश की अन्तर्निहित धार्मिक शक्ति स्पष्ट रूप से प्रकट हो गई है। भारत में धर्म संस्कारकों को चिरकाल से ही इसी प्रकार की अभ्यर्थनाएं प्राप्त हुई हैं। कट्टरपन ही हिन्दू जाति के चरित्र की विशेषता नहीं है और यह भी नहीं है कि वर्तमान आचार-व्यवहारों का परिवर्तन अवांछनीय है—यदि किसी पुरानी प्रथा को दूर कर किसी नये नियम का प्रचार करना हो तो स्वामी विवेकानन्द जैसे व्यक्ति को ही अधिकारी बन कर उसे सम्पन्न करना चाहिये। जब कोई धीरहृदय पवित्र आत्मा तथा सच्चा संस्कारक निष्काम होकर व्यक्तिगत उद्देश-सिद्धि की इच्छा को छोड़ कर जन-कल्याण के उद्देश से दृढ़ता के साथ अग्रसर होता है, तो आचार-नियम शून्य में लुप्त हो जाते हैं, चिरकाल की धारणायें व आदेश आवश्यकतानुसार दूर फेंक दिये जाते हैं तथा बद्धमूल रूढ़ियाँ, रीतिनीति व मतवाद विलुप्त हो जाते हैं। स्वामीजी के प्रचार-कार्य की सफलता का यही एक रहस्य है। समुद्र लांघ कर वे विदेशों में वेदांत का झण्डा उठा कर ले गये थे, इसलिए हम चिराचरित प्रथा के अनुसार उनकी सादर अभ्यर्थना कर रहे हैं। उनके प्रति हमारी सादर श्रद्धा के साथ हमारा विश्वास है, कि पाश्चात्य देशों में उनके द्वारा जिस प्रकार वहाँ की जनता का कल्याण हुआ है उसी प्रकार उनके द्वारा इस देश में भी जनसाधारण का विशेष कल्याण होगा।"

दूसरे दिन रविवार को प्रथा के अनुसार अभ्यर्थना समिति की ओर से स्वामीजी को अभिनन्दन-पत्र दिया गया। खेतरी के महाराजा द्वारा भेजा हुआ अभिनन्दन-पत्र समर्पित होने के बाद क्रम से विभिन्न सम्प्रदाय, सभा व समितियों की ओर से दिये हुये संस्कृत, अंग्रेजी, तामिल, तेलगु आदि भाषाओं में कोई बीस अभिनन्दन-पत्र, पढ़े गये। सभा स्थान में दस हजार से भी अधिक व्यक्ति एकत्रित हुये थे जिनमें से अधिकांश हॉल में स्थान न पाकर बाहर ही प्रतीक्षा कर रहे थे। अतः जनता के अनुरोध से स्वामीजी बाहर आकर एक गाड़ी के कोच बाक्स पर खड़े हो गये। उस समय लोगों को भगवान श्रीकृष्ण के रथ पर आरूढ़ होकर गीता का उपदेश देने का दृश्य स्मरण आरहा था। ईश्वर की इच्छा से स्वामीजी यद्यपि इस ढंग से भाषण देने का अवसर पाकर आनान्दित हुये, परन्तु श्रोताओं की जय-ध्वनि व आनन्दपूर्ण कोलाहल के कारण उनके लिए भलीभाँति भाषण देना असम्भव हो गया। अन्त में लाचार होकर स्वामीजी ने भाषण देने की चेष्टा न करते हुये संक्षेप में यही कहा कि वे जनसमूह के इस अपूर्व उत्साह को देख बड़े आनन्दित हुये हैं, हैं, परन्तु इस उत्साह को मिटने न देना चाहिये। भविष्य में स्वदेश के लिए अनेक बड़े-बड़े कार्यों में इसी प्रकार की प्रज्ज्वलित उत्साहाग्नि की आवश्यकता होगी।

दूसरे दिन मद्रास के विक्टोरिया हाल में पाँच हजार श्रोताओं के सम्मुख उन्होंने 'मेरी समर नीति' शीर्षक प्रसिद्ध भाषण दिया। इसके बाद क्रम से 'भारतीय जीवन में वेदांत का प्रयोग',

भारतीय महापुरुष-गण,' 'हमारा वर्तमान कर्त्तव्य' तथा भारत का भविष्य' शीर्षक चार भाषण दिये। स्वामीजी ने मद्रास में शिष्य व भक्त मण्डली के साथ नौ दिन आनन्द के साथ व्यतीत किये। इसी समय एक दिन एक बहुत बड़े विद्वान स्वामीजी के साथ वेदान्त के सम्बन्ध में चर्चा करने के लिए आये। स्वामीजी का कथन सुनकर उन्होंने कहा, "स्वामीजी, वेदान्त के अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत-वाद, द्वैतवाद आदि सभी प्रकार के मतवाद सत्य हैं, तथा ये चरम उपलब्धि के पथ में भिन्न-भिन्न सीढ़ियाँ हैं—यह बात तो पूर्वाचार्यों में से किसी ने नहीं कही।" आचार्य देव ने मृदु हास्य के साथ उत्तर दिया, "यह कार्य मेरे ही लिए नियत था, इसीलिए मैंने जन्म ग्रहण किया है।"

आचार्य देव जिस समय पाश्चात्य देशों में धर्मप्रचार के कार्य में नियुक्त थे, उस समय वीर-हृदय मद्रासी युवकों ने नाना प्रकार की निन्दा, व्यंग्य व विरोधिता सुन कर भी अविचलित रह कर श्री गुरुदेव द्वारा प्रदर्शित पद्धति से वेदांत के प्रचारकार्य में आत्मनियोग किया था। ये साहसी लगनशील तथा पवित्रहृदय युवकगण धन्य हैं, जिन्होंने भस्माच्छादित अग्निस्वरूप स्वामीजी को सब से पहले जगद्गुरु के रूप में पहचान लिया था। आज चार वर्ष के बाद उनके आराध्य देव के स्वदेश लौटने के उपलक्ष्य में मद्रास नगरी नौ दिनों के विराट् महोत्सव का आयोजन कर रही है, यह देख उनके आनन्द की सीमा न रही। शिष्यगण मद्रास में स्थायी रूप से एक प्रचार-केन्द्र की स्थापना करने की बात सोचने लगे। मद्रास के प्रतिष्ठित व्यक्ति व जन-साधारण द्वारा आग्रह के साथ यह प्रस्ताव अनुमोदित होने पर उन्होंने स्वामीजी के पास अपनी प्रार्थना निवेदित की और उनसे अनुरोध किया कि उक्त प्रचार-केन्द्र की स्थापना लिए के वे मद्रास में कुछ दिन और ठहरें। प्रचार-केन्द्र को स्थापना के संकल्प का स्वामीजी ने बड़े आनन्द के साथ अनुमोदन किया और वचन दिया कि इस कार्य के लिए वे शीघ्र ही एक सुयोग्य गुरुभाई को मद्रास भेज देंगे। तदनानुसार थोड़े ही दिनों के बाद स्वामी रामकृष्णानन्द ने आकर मद्रास का कार्यभार ग्रहण किया। इसी बीच में इधर कलकत्ते से आग्रह के साथ आमंत्रण आने लगे। विशेष रूप से श्रीरामकृष्ण देव का जन्मोत्सव भी निकट जान कर गुरु को प्राणस्वरूप जानने वाले शिष्यों तथा स्वामीजी के मित्रों ने दुःख के साथ उन्हें कलकत्ता जाने के लिए विदा दी।

१५ फरवरी सोम्वार को स्वामीजी मद्रास से कलकत्ता जाने वाले जहाज पर चढ़े। कोलम्बो से मद्रास तक लगातार व्याख्यान, वार्तालाप साक्षात्कार आदि से वे बहुत थक गए थे। लोक-मान्य तिलक ने उनसे पूना जाने के लिए बहुत अनुरोध करते हुए एक पत्र लिखा था, परन्तु प्रबल इच्छा होते हुए भी स्वामीजी ने पूना की यात्रा स्थगित रखी। कुछ दिन विश्राम की आशा से ही उन्होंने स्थल-पथ छोड़ कर जल-पथ से कलकत्ते की यात्रा की थी। मन-ही-मन वे सोच रहे थे, इन अभिनन्दन-सभाओं तथा व्याख्यानों को समाप्त कर कब मैं हिमालय की गोदी में विश्राम प्राप्त करूँगा।

स्वामी विवेकानन्द के भारत में लौटने का समाचार फैलने के समय से ही बंगाल प्रांत और विशेष कर कलकत्ता शहर बड़ी उत्सुकता के साथ उनके शुभागमन की प्रतीक्षा कर रहा था। उनके मद्रास से समुद्र-पथ द्वारा कलकत्ता आने का समाचार पाकर नागरिकों की ओर से संयोजित स्वागत-समिति अनेकानेक तैयारियाँ करने लगी।

स्वामीजी अपने शिष्यों के साथ जब जहाज पर से खिदिरपुर में उतरे तो उन्होंने देखा कि उन्हें स्यालदाह ले जाने के लिए एक स्पेशल ट्रेन खड़ी

है। प्रातःकाल ७॥ बजे गाड़ी धीरे-धीरे स्यालदाह प्लेटफार्म पर आकर खड़ी हुई। गाड़ी की वंश-ध्वनि के साथ ही सहस्र सम्मिलित कण्ठों से उच्चारित 'जय श्रीरामकृष्ण देव की जय,' 'जय श्री स्वामी विवेकानन्दजी की जय' की ध्वनि से स्टेशन गूँज उठा। स्वामीजो ने ट्रेन से उतर कर हाथ जोड़ एकत्रित जनसमूह को प्रणाम किया। बाबू नरेन्द्रनाथ सेन तथा अभ्यर्थना-समिति के प्रमुख सदस्यों ने अनेक कष्ट से भीड़ को पार कर उनके सम्मुख उपस्थित होकर उनकी सादर अभ्यर्थना करते हुए तरह-तरह की पुष्पमालाओं से उन्हें विभूषित किया। सहस्र-सहस्र सम्मान व आग्रह पूर्ण नेत्रों को अपनी ओर आकृष्ट करते हुए कीर्तिमान संन्यासी ने श्रीमान तथा श्रीमती सेविअर के साथ चार घोड़े वाली गाड़ी में आरोहण किय,। युवकगण गाड़ी से घोड़ों को खोल कर स्वयं ही उसे खींच कर ले जाने लगे। पत्र, पुष्प, पल्लव, ध्वजा, पताका आदि से सुशोभित तीन सुन्दर तथा सुसज्जित फाटकों को बाँध कर गाड़ी रिपन कॉलेज में आ पहुँची। वहाँ पर कुछ देर, आए हुए विद्वानों को समयोचित वार्तालाप द्वारा परितृप्त कर स्वामीजी ने उनसे विदा ली। उस दिन अपने गुरुभाइयों के साथ भिक्षा ग्रहण करने के लिए पहले से ही बागबाजार के राय पशुपति नाथ वहादुर के भवन में आमंत्रित किया गया था। दोपहर वहीं बिता कर तीसरे प्रहर वे अपने साथियों के साथ काशीपुर के गोपाल लाल शील महोदय के बगीचे वाले मकान में आए। उनके पाश्चात्य शिष्य व शिष्याओं के साथ विश्राम करने के लिए उक्त भवन को अभ्यर्थना-समिति के अधिकारियों ने अस्थायी रूप से दे दिया था।

प्रातःकाल से सायंकाल तक दर्शकों की भीड़ लगी रहतीं थी—कोई तत्त्व के जिज्ञासु थे तो कोई केवल कौतूहलयुवक दर्शक थे। विश्राम में विघ्न होने पर भी स्वामीजी असन्तुष्ट न होकर बड़े आदर के साथ सभी से वार्तालाप करते थे और रात को आलमबाजार मठ में जाकर भविष्य कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध में गुरुभाइयों के साथ चर्चा करते थे। अब भारत तथा बंगाल के अनेक स्थानों से आग्रहपूर्ण निमन्त्रण आपने लगे, परन्तु स्वामीजी कुछ दिन कलकत्ते में रह कर अपने आदर्श का प्रचार तथा प्रचारकार्य को सुविधा के लिए संघ-स्थापना का उद्योग करने लगे।

एक सताप्ह के बाद २८ फरवरी को कलकत्ता निवासियों की ओर से सर राजा राधाकांत देव के शोभाबाजार के प्रासाद के विशाल प्रांगण में एक अभिनन्दन-सभा बुलाई गई। विशिष्ट नागरिक, पण्डित, उच्च यूरोपीय अधिकारीगण तथा विशेष रूप से कॉलेजों के विद्यार्थी नियत समय से पहले ही सभा में उपस्थित हो गये। लगभग पाँच हजार व्यक्ति उस सभा में सम्मिलित हुए थे। स्वामीजी के सभा-भवन में प्रविष्ट होते ही एकत्रित जनता के वड़े सम्मान के साथ खड़े होकर उनकी जय-ध्वनि का उच्चारण किया। विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा शिष्टाचार व कुशल प्रश्नादि के बाद सभा-पति राजा विनय कृष्ण देव वहादुर ने खड़े हो, अभिनन्दन-पत्र पढ़ तथा उसको चाँदी के पात्र में रख कर स्वामीजी को अर्पित किया। अभिनन्दन-पत्र में पाश्चात्य देशों में वेदान्त, हिन्दू सभ्यता व संस्कृति के प्रचार करने वाले संन्यासी को भारत तथा बंगाल के मुख को उज्ज्वल करने वाली सन्तान कह कर उनको भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी।

अपनी जन्मभूमि में सहस्र-सहस्र स्वदेशवासी और विशेष रूप से युवकों से हार्दिक अभ्यर्थना पाकर स्वामीजी ने जो अपूर्व भाषण दिया था, उसे समग्र जनता ने मंत्रमुग्ध की तरह सुना था। लोगों को ऐसा प्रतीत होता था मानो यह कोई

नवीन व्यक्ति हैं और नवीन स्वर से बातें कर रहे हैं, मानो भारत की शाश्वत आत्मा शरीर धारण करके नवीन भारत को नवीन आशा द्वारा संजीवित करने के लिए अमृत वाणी, अभय वाणी का उच्चारण कर रही है। भारतवर्ष की परम आवश्यकता की उपलब्धि के लिए उन्होंने जिस तपस्या के साथ जीवन को व्यतीत किया है वही मर्मकथा सर्वप्रथम उनके कण्ठ से व्यक्त हुई।

(रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित 'विवेकानन्द चरित' नामक ग्रन्थ से साभार संकलित)

भारत प्रत्यागमन के अवसर पर पाम्बन में भारतवासियों की ओर से प्रथम अभिनन्दन

[स्वामी विवेकानन्द जी के पाम्बन पहुँचने पर रामनाद के राजा ने उनसे भेंट की तथा बड़े स्नेह एवं भक्ति से उनके हार्दिक स्वागत का प्रबन्ध किया। जिस घाट पर स्वामीजी की नाव आकर लगी थी, वहाँ औपचारिक स्वागत के लिए बड़ी तैयारियाँ की गयी थीं तथा सुरुचि के साथ सज्जित मण्डप के नीचे उनके स्वागत का आयोजन किया गया था। उस अवसर पर पाम्बन की जनता की ओर से स्वामीजी की सेवा में निम्नलिखित मानपत्र पढ़ा गया।]

परमपूज्य स्वामीजी,

आज हम अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक तथा परम श्रद्धा के साथ आपका स्वागत करते हुए अत्यन्त उल्लसित हैं। हम आपके प्रति कृतज्ञ इसलिए हैं कि आपने अपने कितने ही आवश्यक कार्यों के बीच कुछ समय निकालकर हमारे यहाँ आना कृपापूर्वक इतनी तत्परता के साथ स्वीकार किया। आपके प्रति हमारी परम श्रद्धा है—क्योंकि आप में अनेकानेक महान सद्‌गुण हैं तथा आपने एक महान् कार्य का दायित्व ग्रहण किया है जिसको आप इतनी योग्यता, दक्षता, उत्साह एवं लगन के साथ सम्पादित कर रहे हैं।

हमें वास्तव में यह देखकर बड़ा हर्ष होता है कि आपने पाश्चात्य लोगों के उर्वर मस्तिष्क में हिन्दू दर्शन के सिद्धान्तों के बीजारोपण के जो प्रयत्न किये हैं वे इतने अधिक सफल हुये हैं कि हमें अभी से अपने चारों ओर उनके अंकुरित होने, लहलाहाने तथा फूलने-फलने के चिन्ह स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगे हैं। हमारी आपसे बस इतनी ही प्रार्थना है कि आप अपने आर्यावर्त के इस निवासकाल में पाश्चात्य देशों की अपेक्षा तनिक अधिक यत्न करते हुए अपने देशवासी बन्धुओं के मानस को थोड़ा जागृत कर उन्हें विवादमय चिरनिन्द्रा से उठा दें तथा उन्हें उस सत्य को फिर स्मरण करा दें जिसे वे बहुत काल से भूले बैठे हैं।

स्वामी जी आप हमारे अध्यात्मिक नेता हैं। हमारे हृदय आपके प्रति प्रगाढ़ स्नेह, अपूर्व श्रद्धा तथा उच्च श्लाघा से ऐसे परिपूर्ण हैं कि हमारे पास उन भावों को व्यक्त करने के लिये शब्द भी नहीं है। हम दयालु ईश्वर से एक स्वर से यही हार्दिक प्रार्थना करते हैं, कि वह आपको चिरंजीवी

करे जिससे कि आप हम लोगों को भला कर सकें तथा वह आपको ऐसी शक्ति दे जिसके द्वारा आप हम लोगों की सोयी हुई विश्वबन्धुत्व भावना को फिर से जागृत कर सकें।

इस स्वागत भाषण के साथ राना साहब ने अपनी ओर से व्यक्तिगत संक्षिप्त स्वागत भाषण भी दिया जो बड़ा ही हृदयस्पर्शी था। इसके अनन्तर स्वामीजी ने निम्नाशय का उत्तर दिया :

स्वामीजी का उत्तर

हमारा पवित्र भारतवर्ष धर्म एवं दर्शन की पुण्यभूमि है। यहीं बड़े-बड़े महात्माओं तथा ऋषियों का जन्म हुआ है, यही संन्यास एवं त्याग की भूमि है तथा यहीं, केवल यहीं, आदिकाल से लेकर आज तक मनुष्य के लिए जीवन के सर्वोच्च आदर्श का द्वार खुला हुआ है।

मैंने पाश्चात्य देशों में भ्रमण किया है और मैं भिन्न-भिन्न देशों में बहुत-सी जातियों से मिला जुला हूँ; और मुझे यह लगा है कि प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक जाति का एक न एक विशिष्ठ आदर्श अवश्य होता है—राष्ट्र के समस्त जीवन में संचार करनेवाला एक महत्त्वपूर्ण आदर्श : कह सकते हैं कि वह आदर्श राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ होती है। परन्तु भारत का मेरुदण्ड राजनीति नहीं है, सैन्य-शक्ति भी नहीं है, व्यावसायिक आधिपत्य भी नहीं है और न यान्त्रिक शक्ति हीं है, वरन् है धर्म। केवल धर्म ही हमारा सर्वस्व है और उसी को हमें रखना भी है। आध्यात्मिकता ही सदैव से भारत की निधि रही है। इसमें कोई शक नहीं कि शारीरिक शक्ति द्वारा अनेक महान् कार्य सम्पन्न होते हैं और इसी प्रकार मस्तिष्क की अभिव्यक्ति भी अद्भुत चीज है, जिससे विज्ञान के सहारे तरह-तरह के यन्त्रों तथा मशीनों का निर्माण होता है, फिर भी जितना जबरदस्त प्रभाव आत्मा का विश्व पर पड़ता है उतना किसी का नहीं।

भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतवर्ष सदैव से अत्यधिक क्रियाशील रहा है। आज हमें बहुत से लोगों जिन्हें और अधिक जानकारी होनी चाहिए, यह सिखा रहें हैं कि हिन्दू जाति सदैव से भीरु तथा निष्क्रिय रही है और यह बात विदेशियों में एक प्रकार से कहावत के रूप में प्रचलित हो गयी है। मैं इस विचार को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता कि भारतवर्ष कभी निष्क्रिय रहा है। सत्य तो यह है कि जितनी कर्मण्यता हमारे इस पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में रही है उतनी शायद ही कहीं रही हो और इस कर्मण्यता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि हमारी यह चिर प्राचीन एवं महान् हिन्दू जाति आज भी ज्यों की त्यों जीवित है और इतना ही नहीं बल्कि अपने उज्जवलतम जीवन के प्रत्येक युग में वह मानो अविनाशी और अक्षय नवयौवन प्राप्त करती है। यह कर्मण्यता हमारे यहाँ धर्म में प्रकट होती है। परन्तु मानव प्रकृति में यह एक विचित्रता है कि वह दूसरों का विचार अपनी ही क्रियाशीलता के प्रतिमानों के आधार पर करता है। उदाहरणार्थ एक मोची को ले लो। उसे केवल जूता बनाने का ही ज्ञान होता है और इसलिए वह सोचता है कि इस जीवन में जूता बनाने के अतिरिक्त और दूसरा कोई काम ही नहीं है। इसी प्रकार एक ईंट ढालनेवाले को ईंट बनाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझता तथा अपने जीवन में दिन-प्रतिदिन वह यही सिद्ध करता रहता है। इस सबका एक दूसरा कारण है जिससे इसकी व्याख्या की जा सकती है। जब प्रकाश का स्पन्दन बहुत तेज होता है तो उसे हम नहीं देख पाते हैं, क्योंकि हमारे नेत्रों की बनावट कुछ ऐसी होती है कि हम अपनी साधारण दृष्टिशक्ति के परे नहीं जा सकते हैं। परन्तु योगी अपनी आध्यात्मिक

अन्तर्दृष्टि से साधारण अज्ञ लोगों के भौतिक आवरण को भेदकर देखने में समर्थ होते हैं।

आज तो समस्त संसार आध्यात्मिक खाद्य के लिये भारतभूमि की ओर ताक रहा है, और भारत को ही यह प्रत्येक राष्ट्र को देना होगा। केवल भारत में ही मनुष्यजाति का सर्वोच्च आदर्श प्राप्य है और आज कितने ही पाश्चात्य पण्डित हमारे इस आदर्श को, जो हमारे संस्कृत साहित्य तथा दर्शन शास्त्रों में निहित है, समझने की चेष्टा कर रहे हैं। सदियों से यही आदर्श भारत की एक विशेषता रही है।

जबसे इतिहास आरम्भ हुआ है, कोई भी प्रचारक भारत के बाहर हिन्दू सिद्धान्तों और मतों का प्रचार करने के लिये नहीं गया, परन्तु अब हममें एक आश्चर्यजनक परिवर्तन आ रहा है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है, "जब-जब धर्म की हानि होती है तथा अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब साधुओं के परित्राण, दुष्कर्मों के नाश तथा धर्म-संस्थापन के लिये मैं जन्म लेता हूँ।"[1] धार्मिक अन्वेषणों द्वारा हमें इस सत्य का पता चलता है कि उत्तम आचरणशास्त्र से युक्त कोई भी ऐसा देश नहीं है, जिसने उसका कुछ-न-कुछ अंश हमसे न लिया हो, तथा कोई भी ऐसा धर्म नहीं है, जिसमें आत्मा के अमरत्व का ज्ञान विद्यमान है, और उसने भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वह हमसे ग्रहण नहीं किया है।

उन्नसवीं शताब्दी के अन्त में जितनी डाकाजनी, जितना अत्याचार तथा दुर्बल के प्रति जितनी निर्दयता हुई है, उतनी संसार के इतिहास में शायद कभी भी नहीं हुई है प्रत्येक व्यक्ति को यह भलिभांति समझ लेना चाहिए कि जब तक हम अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त नहीं कर लेते तब तक हमारी किसी प्रकार मुक्ति सम्भव नहीं, जो मनुष्य प्रकृति का दास है, वह कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। यह महान सत्य आज संसार की सब जातियाँ धीरे-धीरे समझने लगी हैं, तथा उसका आदर करने लगी हैं। जब शिष्य इस सत्य की धारणा के योग्य बन जाता है तभी उस पर गुरु की कृपा होती है। ईश्वर अपने बच्चों को फिर असीम कृपापूर्वक सहायता करता है और उसकी यह कृपा सभी धर्म मतों में सदा प्रवाहित रहती है। हमारे प्रभु सब धर्मों के ईश्वर हैं। यह उदार भाव केवल भारतवर्ष में हीं विद्यमान है है और मैं इस बात की चुनौती देकर कहता हूँ कि ऐसा उदार भाव संसार के अन्यान्य धर्मशास्त्रों में कोई दिखाये तो सही!

ईश्वर के विधान से आज हम हिन्दू बहुत कठिन तथा दायित्वपूर्ण स्थिति में हैं। आज कितनी ही पाश्चात्य जातियाँ हमारे पास आध्यात्मिक सहायता के लिये आ रही हैं। आज भारत की सन्तान के ऊपर यह महान् नैतिक दायित्व है कि वे मानवीय अस्तित्व की समस्या के विषय में संसार के पथ प्रदर्शन के लिये अपने को पूरी तैयार कर लें। एक बात यहाँ पर ध्यान में रखने योग्य है— जहाँ अन्य देशों के अच्छे और बड़े-बड़े आदमी भी स्वयं इस बात का गर्व करते हैं कि उनके पूर्वज किसी एक बड़े डाकुओं के गिरोह के सरदार थे जो समय-समय पर अपनी पहाड़ी गुफाओं से निकलकर बटोहियों पर छापा मारा करते थे: वहाँ हम हिन्दू लोग इस बात पर गर्व करते हैं कि हम उन ऋषि तथा महात्माओं के वंशज है जो वन के फल-फूल के आहार पर पहाड़ों की कन्दराओं में रहते थे तथा ब्रह्म चिन्तन में मग्न रहते थे। भले ही आज हम अधःपतित और पद भ्रष्ट हो गये हो और चाहे जितना भी क्यों न गिर गये हों, परन्तु यह निश्चित है कि आज यदि हम अपने धर्म के लिए तत्परता से कार्य करने लग जायें तो हम अपना गौरव प्राप्त कर सकते हैं।

तुम सब ने मेरा स्नेह और श्रद्धापूर्वक जो यह स्वागत किया है उसके लिये मैं तुमको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। रामनाद के राजसाहब का मेरे प्रति जो प्रेम है उसका आभार प्रदर्शन मैं शब्दों द्वारा नहीं कर सकता। मैं कह सकता हूँ कि मुझसे अथवा मेरे द्वारा यदि कोई श्रेष्ठ कार्य हुआ है तो भारतवर्ष उसके लिये राजसाहब का ऋणी है। क्योंकि मेरे शिकागों जाने का विचार सबसे पहले राजसाहब के ही मन में उठा था, उन्होंने वह विचार मेरे सम्मुख रखा तथा उन्होंने ही इसके लिये मुझसे बार-बार आग्रह किया कि मैं शिकागों अवश्य जाऊँ। आज मेरे साथ खड़े होकर अपनी स्वाभाविक लगन के साथ वे मुझसे यही आशा कर रहे हैं कि मैं अधिकाधिक कार्य करता जाऊँ। मेरी तो यही इच्छा है कि हमारी प्रिय मातृभूमि में लगन के साथ रुचि लेनेवाले तथा उसकी आध्यात्मिक उन्नति के निमित्त यत्नशील ऐसे आधे दर्जन राजा और हों।

स्वामी विवेकानन्द का राष्ट्र को आह्वान

स्वामीजी गम्भीरानन्दजी महाराज
एकादश महाध्यक्ष,
रामकृष्ण मठ व रामकृष्ण मिशन

[शिकागो विश्वधर्म सम्मेलन के बाद चार वर्षों तक यूरोप तथा अमेरिका में वेदान्तधर्म की दुंदुभि बजाकर स्वामी विवेकानन्द स्वदेश लौटे। इस प्रत्यावर्तन के दौरान कोलम्बो से कलकत्ता तक उन्होंने नवीन भारत के उद्‌बोधन-मन्त्रों का उच्चारण किया। अपने अग्निमय आह्वान के द्वारा उन्होंने भारतवासियों को स्वदेश के पुनर्जागरण के लिए उद्‌बुद्ध किया। उसी आग्नेय आह्वान का सार-संग्रह यहाँ प्रस्तुत किया गया है।]

१६ दिसम्बर १८९६ को स्वामीजी लन्दन से स्वदेश की ओर चल पड़े। एक महीने की यात्रा के बाद १५ जनवरी, १८९७ को वे कोलम्बो पहुँचे। श्रीलंका राजनीतिक दृष्टि से उन दिनों भारत का ही एक हिस्सा था और सांस्कृतिक दृष्टि से भी भारत के साथ उसका संयोग-सूत्र स्पष्ट है। कोलम्बो में स्वामीजी का भव्य स्वागत हुआ। एक सार्वजनिक सभा में कोलम्बो निवासी हिन्दुओं की ओर से उनका अभिनन्दन किया गया। कर्ण-भेदी हर्षध्वनि के बीच स्वामीजी उठ खड़े हुए और अपनी प्रभाव शैली में इसका वाग्मितापूर्ण उत्तर दिया। उनकी बातें सहज एवं स्पष्ट होने के बावजूद वहाँ उपस्थित विराट श्रोतृमण्डली के मन में उसने गहरा आन्दोलन छेड़ा। अपने उत्तररूपी भाषण में स्वामीजी ने कहा कि वह समारोह किसी महान राजनीतिज्ञ, किसी वीर सैनिक अथवा किसी धन-कुबेर के सम्मानार्थ नहीं हो रहा है। उन्होंने कहा, "एक अकिंचन संन्यासी का आपने जो यह राजोचित सत्कार किया है, वह हिन्दुओं की आध्यात्मिकता का परिचायक है।" उन्होंने कहा "यही आध्यात्मिकता की चरम अभिव्यक्तियों में से एक है।" दृढ़तापूर्वक समझा दिया कि यदि हमारे राष्ट्र को जीवित रहना है, तो हमें धर्म को राष्ट्रीय जीवन का मेरुदण्ड बना लेने की

आवश्यकता है; और उन्हें जिस प्रकार अभिनन्दित किया गया उसे उन्होंने व्यक्तिगत रूप से नहीं, अपितु एक मौलिक सिद्धांत की स्वीकृति के रूप में ही ग्रहण किया।

जनसाधारण के समक्ष उनका प्रथम व्याख्यान अगले दिन हुआ। इस व्याख्यान का विषय था—'पुण्यभूमि भारत'। यह व्याख्यान केवल वाग्मिता की दृष्टि से ही उल्लेखनीय नहीं है, अपितु अपने वक्तव्य विषयों की दृष्टि से भी विशेष मननीय है। स्वामीजी ने बताया कि भारत की आध्यात्मिकता के सम्बन्ध में सम्भवतः भावुकता के कारण पहले उनका जो विश्वास था, वह उनके विदेश-भ्रमण से प्राप्त अनुभवों के फलस्वरूप अब एक प्रमाणित सत्य हो गया है। फिर उन्होंने घोषणा की—"यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ आध्यात्मिकता तथा अन्तर्दृष्टि का सर्वाधिक विकास हुआ है, तो वह भारत ही है।... यहीं से उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम सभी ओर दार्शनिक ज्ञान की प्रबल तरंगें प्रवाहित हुई हैं, और यहीं से वह धारा भी निकलेगी, जो सम्पूर्ण पृथ्वी की भौतिक सभ्यता को आध्यात्मिकता से पूर्ण कर देगी।" परन्तु अन्य देशों के द्वारा जिस प्रकार युद्ध एवं रक्तपात की सहायता से भावों का प्रचार हुआ करता है, भारत का आध्यात्मिक भाव किसी काल में उस प्रकार प्रचारित नहीं हुआ। "अत्यन्त प्राचीन काल से अब तक एक-एक कर न जाने कितनी भाव-तरंगें भारत से प्रसारित हुई हैं, परन्तु उनमें से प्रत्येक आगे शान्ति एवं पीछे आशीर्वाद लेकर अग्रसर हुआ है।" अन्य प्राचीन जातियों के लुप्त हो जाने पर भी "उन्हीं पुण्य-कर्मों के फलस्वरूप हम लोग आज भी जीवित हैं।" हमारे राष्ट्रीय जीवन ने धर्म को ही अपना केन्द्र निर्धारित किया है।" इस भारतवर्ष में मनुष्य का सारा उद्यम धर्म के लिए है, धर्मलाभ ही उसके जीवन का एकमात्र कार्य हैं।... प्रत्येक राष्ट्र के जीवन का मानो एक विशेष उद्देश्य रहता है।...समग्र मानवजाति की प्रगति में इस शान्तिप्रिय हिन्दू जाति का भी कुछ योग-दान है और पृथ्वी को आध्यात्मिक आलोक ही भारत का वह दान है।" परन्तु इसके साथ ही उन्होंने सावधान भी कर दिया "भारत के बाहर हमारे धर्म का जो प्रभाव पड़ता है, उनसे मेरा तात्पर्य भारतीय धर्म के मूलतत्त्वों से है जिनके आधार पर भारतीय धर्म की अट्टालिका खड़ी है।" वस्तुतः उन्होंने भारत के मौलिक एवं शाश्वत आध्यात्मिक सन्देश की ओर ही लोगों का ध्यान आकृष्ट किया था, हर युग की आवश्यकता के अनुरूप बदलनेवाले आचार-व्यवहारों अथवा विधि-निषेधों की बात उन्होंने नहीं कही। और "सर्वोपरि पृथ्वी को यह महान सत्य हमें सिखाना होगा?......संसार को भारतवर्ष से न केवल परधर्म-सहिष्णुता, अन्य धर्मों के प्रति सच्ची सहानुभूति का भाव रखने की शिक्षा भी ग्रहण करनी होगी।......सब प्रकार के भेदों को दूर करना असंभव है। विभिन्नताएँ तो रहेंगी ही, उनके बिना जीवन असम्भव है।......परन्तु इसी कारण एक-दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखना अथवा आपस में लड़ाई-झगड़े करना आवश्यक नहीं है।"

दो दिन बाद कोलम्बो के सार्वजनिक सभागार में स्वामीजी ने अद्वैतवाद विषयक अपना व्याख्यान दिया। उस दिन श्रोतागण एक मर्म-स्पर्शी तथा प्रेरक व्याख्यान सुनकर मुग्ध हो गये। व्याख्यान के दौरान उन्होंने देखा कि श्रोताओं में अनेक देशवासी विदेशी पोशाक पहने हैं। इस पर नाराज होकर उन्होंने स्पष्ट रूप से समझा दिया कि यूरोपीय वेशभूषा भारतवासियों के शरीर पर बिल्कुल शोभा नहीं देती और इस प्रकार का

दाससुलभ अनुकरण बड़े लज्जे की बात है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि किसी खास पोशाक की निन्दा करना उनका उद्देश्य नहीं है, अपितु जिस दाससुलभ दुर्बलता से प्रवृत्त होकर मनुष्य ऐसे अनुकरण में लग जाते हैं, वे उसी के समालोचक हैं।

कोलम्बो से स्वामीजी कैन्डी गये। वहाँ से अनुराधापुरम् होते हुए जाफना पहुँचे। सर्वत्र उनका भव्य स्वागत किया गया, अभिनन्दन-पत्र पढ़े गये तथा स्वामीजी ने भी अपनी प्रेरणादायी वाणी से सबको मुग्ध किया। जाफना में ही स्वामीजी का श्रीलंका-भ्रमण समाप्त हुआ। जाफना से वे एक जहाज में भारत की ओर चल पड़े।

भारतवर्ष के अभ्युत्थान के लिए स्वामीजी के मन में जो योजनाएँ आकार ले रही थीं; उसका कुछ अंश श्रीलंका में व्यक्त हुआ था, तथापि उसका पूर्ण परिचय उनके दक्षिण भारत में प्रदत्त व्याख्यानमाला में ही मिलता है। इस दृष्टि से उनके परवर्ती भाषण तथा कार्य विशेष रूप से चिन्तनीय हैं।

२६ जनवरी १८९७ को स्वामी जी पाम्बन पहुँचे। वहाँ रामनद-नरेश तथा नगरवासियों ने तुमुल उत्साह के साथ स्वामीजी का स्वागत किया। एक सभा में उनका अभिनन्दन किया गया। अभिनन्दन-पत्र में अन्य बातों के साथ लिखा गया था—"पाश्चात्य देशों में आपके द्वारा हिन्दू धर्म के प्रचार का काफी अच्छा फल हुआ है; अब आप अनुग्रह पूर्वक इस निद्रित भारत को उसकी सुदीर्घ निद्रा से जगाने के प्रयास में लग जायँ।" यह भारत का नेतृत्व स्वीकार करने के लिए उन्हें खुला निमंत्रण था। उस आमंत्रण के उत्तर में स्वामीजी ने अपने नवयुग के सन्देश की कुछ मूल बातें सुनायीं। उन्होंने कहा—मुझे लगता है कि प्रत्येक राष्ट्र का अपना-अपना एक मुख्य आदर्श होता है। वह आदर्श ही मानो उसके राष्ट्रीय जीवन का मेरुदण्ड है। भारत का मेरुदण्ड राजनीति, युद्ध, वाणिज्य अथवा यंत्रशक्ति नहीं है; धर्म—केवल धर्म ही भारत का मेरुदण्ड है। भारत में चिरकाल से धर्म का ही प्राधान्य रहा है।······ भारत किसी काल में निष्क्रिय था, यह बात मैं किसी भी हालत में स्वीकार नहीं कर सकता।··· इसका प्रमाण यह है कि हमारी जाति अति प्राचीन एवं यह महान जाति आज भी जीवित है। ···इस समय सारी दुनिया आध्यात्मिक खाद्य के लिए भारतभूमि की ओर ताक रही है और पृथ्वी के समस्त राष्ट्र के लिए भारत को इसकी व्यवस्था करनी होगी।···भले ही आज हम अवनत तथा अधःपतित हो गए हों, पर यदि हम अपने धर्म के लिए जी-जान से कार्य में लग जायँ; तो हम पुनः महानता के पद पर आरुढ़ हो सकेंगे।"

पाम्बन आगमन के अगले दिन वे रामेश्वरम् मन्दिर में दर्शन करने गये। वहाँ उपस्थित लोगों के सम्मुख कुछ कहने का अनुरोध किये जाने पर वे मन्दिर के सुविस्तृत प्रांगण में खड़े हो गए और अपनी प्राणस्पर्शी सुललित भाषा में उन्होंने तीर्थ-महात्म्य तथा उपासना के बारे में एक व्याख्यान दिया। उन्होंने कहा—धर्म प्रेम में ही है: बाह्य अनुष्ठानों में नहीं।··· सभी उपासनाओं का सार है—शुद्धचित्त होना तथा दूसरों का कल्याण करना।···जो व्यक्ति निर्धन, दुर्बल तथा रोगी—इनमें शिव का दर्शन करता है, वही शिव की सच्ची उपासना करता है। और जो व्यक्ति केवल प्रतिमा में ही शिवोपासना करता है, उसकी उपासना प्रारम्भिक मात्र है।···जो शिव की सेवा करना चाहता है, उसे सर्व-प्रथम शिव के सन्तानों की सेवा करनी होगी।" स्वामीजी ने धर्म को एक सक्रिय रूप देने का आह्वान किया—सेवा

तथा अपनी मुक्ति के लिए प्रयास को एक सूत्र में ग्रथित कर दिया। स्वामीजी के इस भाव से अनुप्राणित होकर रामनद के राजा ने अगले दिन उनके उपदेशों को रूपायित करने के लिए हजारों निर्धन लोगों में अन्न-वस्त्र का वितरण किया। वस्तुतः स्वामीजी के भारत आगमन के पश्चात यहीं से उनके 'व्यावहारिक वेदान्त' का क्रियान्वयन आरम्भ हुआ।

पाम्बन से २६ जनवरी १८९७ को स्वामीजी रामनद पहुँचे। राजा के सभागार में ही स्वामीजी के सत्कार की व्यवस्था हुई थी। रामनाद की जनता की ओर से राजा के भाई दिनकर सेतुपति ने अभिनन्दन-पत्र पढ़कर सुनाया। उपर्युक्त अभिनन्दन के उत्तर में स्वामीजी ने जो कुछ कहा, वह भी उनकी विचारधारा को समझने की दृष्टि से विशेष उपयोगी है। फिर यह व्याख्यान वाग्मिता, शब्दमाधुरी तथा प्रेरणा की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। श्रोताओं की दृष्टि को भारत की गरिमा के प्रति आकृष्ट करते हुए तथा सबके मन में एक नवयुग की आशा का संचार करते हुए वे बोले—"सुदीर्घ रजनी अब समाप्त होती सी जान पड़ती है। महादुःख का अन्त आ गया लगता है। महानिद्रा में निमग्न शव मानो जाग रहा है। इतिहास की बात दूर; किम्वदन्तियाँ भी जिस सुदूर अतीत के घनान्धकार को भेदने में असमर्थ है, वहीं से एक अपूर्व आवाज निःसृत हो रही है। ज्ञान, भक्ति एवं कर्म के अनन्त हिमालय स्वरूप हमारी मातृभूमि भारत की हर चोटी से प्रतिध्वनित होती हुई यह आवाज मृदु परन्तु दृढ़ एवं अभ्रान्त भाषा में हमारे पास आ रही है। दिन पर दिन यह और भी स्पष्ट तथा गम्भीर होती जा रही है।...जो अन्धे हैं वे देख नहीं सकते, जो पागल हैं वे समझ नहीं पाते—हमारी यह मातृभूमि अब अपनी गहरी निद्रा को त्यागकर जाग्रत हो रही है। अब कोई भी इसकी गति को रोक नहीं सकता। अब यह पुनः सोयेगी भी नहीं। कोई बाह्य शक्ति अब इसे दबाकर नहीं रख सकती क्योंकि यह असाधारण 'शक्ति' अब अपने पावों पर खड़ी हो रही है।" उन्होंने आगे कहा—'हमारी इस पवित्र भूमि का मेरुदण्ड मूलाधार अथवा जीवन-केन्द्र एकमात्र धर्म ही है। ...तुम लोग यदि हमारे राष्ट्र में उत्साह-उद्दीपना का संचार करना चाहते हो, तो इन्हें इसी राज्य का कोई समाचार दो, वे लोग उन्मत्त हो उठेंगे।" भारत की विशेषता तथा उसके लिए धर्म के महत्व से पूर्णतः परिचित होकर भी स्वामीजी कूपमण्डूकता के विरोधी थे, वे जानते थे कि भारत को अन्य राष्ट्रों से भीं बहुत कुछ सीखना होगा। अतः उन्होंने कहा—"अब प्रश्न उठता है कि हमें भी संसार से कुछ सीखना है अथवा नहीं? दूसरी जातियों से शायद हमें थोड़ा सा भौतिक विज्ञान सीखना पड़े। किस प्रकार संगठन बनाकर उसका परिचालन हो, किस प्रकार विभिन्न शक्तियों को नियमानुसार कार्य में लगाकर थोड़े प्रयत्न से अधिक लाभ हो, आदि बातें भी हमें सीखनी होंगी। हमारा लक्ष्य त्याग ही है, तथापि जबतक देश के सभी लोग पूर्ण रूप से इस त्यागभाव को स्वीकार करने में समर्थ नहीं हो जाते तब तक पूर्वोक्त चीजें शायद कुछ हद तक हमें पाश्चात्य देशों से सीखनी पड़े।" परन्तु एक विषय में स्वामीजी ने सब को सावधान किया और वह यह कि पाश्चात्यों से शिक्षा ग्रहण करना आवश्यक होने पर भी भारतीय भाव को त्यागते हुए उनका अन्धानुकरण सर्वथा निन्दनीय है। वे बोले, "एक ओर तो है हमारा प्राचीन हिन्दू समाज और दूसरी ओर है आधुनिक यूरोपीय सभ्यता। यदि आवश्यक हुआ तो इन दोनों में से मैं प्राचीन हिन्दू समाज को ही चुनूँगा; क्योंकि अज्ञानी होने पर भी कट्टर हिन्दू के हृदय में एक विश्वास है, जिसके

बल पर वह अपने पाँवों पर खड़ा हो सकता है; परन्तु पाश्चात्य भावों में रंगा हुआ व्यक्ति पूर्णतः मेरुदण्डविहीन है, वह इधर-उधर के विभिन्न स्रोतों से एकत्र किए हुए अपरिपक्व, विश्रृंखल तथा बेमेल भावों की खिचड़ी मात्र है।···वह जो समाज-सुधार के लिए अग्रसर होता है, हमारी अनेक सामाजिक प्रथाओं के विरुद्ध तीव्र आक्रमण करता है, इसका मुख्य कारण यह है कि इसके लिए उसे साहबों से वाहवाही मिलती है।··· पहले अपने पैरों पर खड़े हो जाओ, फिर सभी राष्ट्रों से शिक्षा ग्रहण करके, जो भी हो सके, अपना लो; जो भी तुम्हारे काम का है, ले लो।···परन्तु तुम उनसे जो कुछ सीखो, हिन्दू होने के नाते उन सबको तुम्हें अपने राष्ट्रीय आदर्शों के अधीन रखना होगा।" भारतीय नवजागरण के आधार के रूप में स्वामीजी जो आदर्श सबके सामने स्थापित करने को उद्यत हुए थे, उसका प्रायः सब यहाँ संक्षेप में कह दिया गया। मद्रास के व्याख्यानों में हमें इन्हीं भावों का पूर्णतर विकास दृष्टिगोचर होगा, साथ में भाष्य के रूप में और भी दो-चार नयी बातें आएँगी।

सभा समाप्त होने के पूर्व रामनाद-नरेश ने घोषणा की कि स्वामीजी के रामनाद में शुभागमन के उपलक्ष्य में चन्दा एकत्र करके मद्रास के अकाल राहत कार्य हेतु भेजना उचित होगा। उपस्थित लोगों ने साधुवाद सहित इस प्रस्ताव का समर्थन किया। इस प्रकार स्वामीजी द्वारा प्रवर्तित सेवा-धर्म सुनिश्चित आकार ग्रहण करने लगा।

३१ जनवरी १८९७ को स्वामीजी ने रामनद से मद्रास की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में वे परमकुड़ी, मानमदुरा, मदुरै तथा कुम्भकोणम में रूके।

परमकुड़ी के लोगों के द्वारा प्रदत्त अभिनन्दन के उत्तर में दिये गये अपने व्याख्यान में स्वामीजी ने विभिन्न दृष्टिकोणों से दिखा दिया कि धर्म को किस प्रकार एक सबल तथा सक्रिय समाज का आधार बनाया जा सकता है।

मानमदुरा में दिये गये अभिनन्दन का उत्तर देते हुए अन्य बातों के अलिखित स्वामीजी ने कहा, "···अर्थहीन विषयों पर छिड़े उन पुराने विवादों को त्याग दो। ···हममें से अधिकांश लोग अब न तो वेदान्ती हैं, न पौराणिक और न ही तांत्रिक, हम तो केवल 'छूतमार्गी' रह गये हैं। हमारा धर्म रसोईघर में है। 'भात की हाँड़ी' हमारा ईश्वर है और मंत्र है 'मुझे मत छुओ, मुझे मत छुओ, मैं महापवित्र हूँ।'"

मदुरै-अभिनन्दन के उत्तर में भी स्वामीजी ने एक संक्षिप्त व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान के दौरान उन्होंने कहा—"एक ओर है अन्धविश्वासों से भरा हुआ प्राचीन समाज और दूसरी ओर है जड़वाद यूरोपीय भाव, नास्तिकता, तथाकथित सुधार जो पाश्चात्य जगत की उन्नति की जड़ तक फैला हुआ है। हमें इन दोनों से ही सावधान रहना होगा। ·· द्वितीयतः हमें स्मरण रखना होगा कि प्रायः हम जिसे धर्म-विश्वास कहते हैं, वे हमारे छोटे-छोटे ग्राम-देवताओं से सम्बन्धित तथा कुछ अन्ध विश्वासपूर्ण लोकाचार मात्र हैं। ···याद रखो, ये आचार तथा प्रथाएँ चिरकाल से ही बदलती आयी हैं। ···वेद सभी युगों में समभाव से विद्यमान रहते हैं। किन्तु स्मृतियों की प्रधानता युग-परिवर्तन के साथ ही चली जाती है। ···मैं 'कट्टर' वाली निष्ठा भी चाहता हूँ और जड़वादी का उदार भाव भी चाहता हूँ। हमें ऐसे हृदय की आवश्यकता है, जो समुद्र सा गम्भीर तथा आकाश सा उदार हो।" अन्त में उन्होंने किसी भी प्राचीन प्रथा की व्यर्थ निन्दा न कर तथा अतीत काल में वे उपयोगी थीं ऐसा जानकर उनकी आलोचना में अपनी शक्ति बरबाद करने से मना किया और

सत्य की उपलब्धि कर ऋषित्व में प्रतिष्ठित होने एवं तदनुसार अपने तथा दूसरों को मुक्ति-साधन में लग जाने का आह्वान किया।

कुम्भकोणम में हिन्दू समाज तथा नगर के हिन्दू छात्रों की ओर से उन्हें दो अभिनन्दन-पत्र दिये गये। उनके उत्तर में स्वामीजी ने जो व्याख्यान दिया, उसका विषय था—'वेदान्त का उद्देश्य'। कुम्भकोणम का व्याख्यान काफी लम्बा तथा तथ्यपूर्ण है। इसमें पूर्व कथित बातों का ही पुनर्लेखन एवं विस्तार हुआ है। साथ ही इसमें दो-चार तथ्यों को और भी स्पष्ट तथा नये रूप में प्रस्तुत किया गया है। नयी बात जो उन्होंने कही—"मेरा विश्वास है कि वेदान्त—केवल वेदान्त ही सार्वभौमिक धर्म हो सकता है, अन्य कोई भी धर्म सार्वभौमिक नहीं कहला सकता।" इसके समर्थन में युक्तियां दिखाते हुए उन्होंने कहा कि वेदान्त किसी व्यक्ति विशेष, ग्रन्थ विशेष अथवा ईश्वर सम्वन्धी किसी एकांगी विश्वास पर प्रतिष्ठित नहीं है—वह इष्ट में निष्ठा अथवा व्यक्तिगत आदर्श के अनुसरण में मानव को स्वाधीनता देता है। इसके अतिरिक्त "जगत् के समस्त धर्मग्रन्थों में एकमात्र वेदान्त ही ऐसा है जिसकी शिक्षाओं के साथ वाह्य प्रकृति के वैज्ञानिक अनुसंधान से प्राप्त परिणामों का पूर्ण सामंजस्य है। ...वेदान्त की चर्चा का एक अन्य कारण है—इसकी अद्भुत युक्तिसिद्धता।" आगे उन्होंने कहा, "सभी धर्म सत्य हैं। ...जगत् की समस्त वस्तुएँ आपात दृष्टि से विभिन्न प्रतीत होने पर भी सब एक ही वस्तु की अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं।" इसीलिए भारतीय धर्म एवं समाज का मूलमंत्र है—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'—सत्य एक है, ज्ञानी लोग उसी का नाना रूपों में वर्णन करते हैं। "समग्र संसार को हमसे इस परधर्म-सहिष्णुता की महान शिक्षा ग्रहण करनी होगी।" फिर इस अद्वैतवाद को व्यावहारिक भी बनाना होगा—"भारत की मूक जनता की उन्नति के लिए इस अद्वैतवाद का प्रचार आवश्यक है। इस अद्वैतवाद को कार्य रूप में परिणत किये विना हमारी मातृभूमि के पुनरुत्थान का और कोई उपाय नहीं है। ...सव प्रकार के नीति-शास्त्रों एवं धर्म-विज्ञान का एकमात्र तार्किक आधार यह एकत्व ही है।" अद्वैतवाद के अवलम्बन से ही सब में आत्मविश्वास लौट आयेगा और ऐसी आत्मशक्ति के द्वारा ही देश तथा जनता की उन्नति होगी। "विश्वास, विश्वास, विश्वास—यही उन्नति का एकमात्र उपाय है। ...इसीलिए वेदान्त के अद्वैत-भाव का प्रचार करना आवश्यक है, ताकि लोगों के हृदय जाग्रत हों और वे अपनी आत्मा की महिमा जान सकें। ...भारत के इन दीन-हीन लोगों को इन पददलित जाति के लोगों को उनका वास्तविक स्वरूप समझा देना परम आवश्यक है। ...उठो, अपने स्वरूप को प्रकट करो—तुम्हारे भीतर जो ईश्वर विद्यमान हैं, उनकी सत्ता उच्च स्वर में घोषित करो, उन्हें अस्वीकार मत करो।"

स्वामीजी ने आदर्श का अनुसरण करने हेतु आत्मस्वरूप प्रकट करने की तथा ईश्वर की प्राप्ति करने की बात ही कही; [तथाकथित] समाज-सुधार की ओर उनका रुझान नहीं हुआ। वे बोले—"मैं समाज के दोषों का सुधार करने का प्रयास नहीं कर रहा हूँ। मैं तुमसे केवल इतना ही कहता हूँ कि आगे बढ़ो और हमारे पूर्वज मानव जाति की उन्नति के लिए जो सर्वांग सुन्दर प्रणाली बता गये हैं, उसी का अवलम्बन कर उनका उद्देश्य भलीभाँति कार्य रूप में परिणत करो। तुमसे मेरा यही कहना है कि मानव के एकत्व तथा उसके अन्तर्निहित देवत्व—इन वेदान्ती आदर्शों की अधिकाधिक उपलब्धि करते रहो।" स्वदेश प्रेम के मामले में भी स्वामी जी किसी के पीछे नहीं थे, किन्तु केवल भारत के

बारे में ही न सोचकर उन्होंने समग्र मानव जाति को उन्नति के लिए सबका आह्वान किया; परन्तु अन्त में स्वदेश प्रेम की बात कहना कभी न भूले : "देशभक्त बनो। जिस जाति ने अतीत में हमारे लिए इतने बड़े-बड़े कार्य किये, उसे प्राणों से भी प्रिय समझो। हे मेरे स्वदेशवासियों ! संसार के अन्य राष्ट्रों के साथ जितनी ही मैं अपने राष्ट्र की तुलना करता हूँ, उतना ही तुम लोगों के प्रति मेरा प्रेम बढ़ता जाता है।" ...."हे हिन्दुओं ! मैं तुम्हें केवल इतना ही स्मरण करा देना चाहता हूँ कि हमारा यह राष्ट्रीय जलपोत युगों से हमें उस पार ले जाता रहा है। सम्भवत: आज इसमें कुछ छिद्र हो गये हैं, शायद यह थोड़ा जीर्ण भी हो गया है। यदि ऐसी बात है तो हम समस्त भारतवासियों को अपने प्राणों की बाजी लगाकर इन छिद्रों को बन्द करने की तथा इसके जीर्णोद्धार की चेष्टा करनी चाहिए। हमें अपने समस्त देश भाइयों को इस खतरे की सूचना दे देनी चाहिए, ताकि वे जागें और हमारी सहायता करें। ...कोसने, निन्दा करने तथा गालियों की बौछार करने से कोई सदुद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता; ...केवल पारस्परिक सद्भाव तथा प्रेम के द्वारा ही अच्छे परिणाम की आशा हो सकती है।"

स्वामीजी ६ फरवरी को मद्रास पहुँचे। मद्रास की विभिन्न संस्थाओं की ओर से स्वामीजी को दिये जानेवाले अभिनन्दन-पत्रों तथा उनके व्याख्यानों की सुचारु रूप से व्यवस्था करने के लिए प्रतिष्ठित लोगों ने शीघ्र ही सलाह-मशविरा करके एक कार्य सूची निर्धारित कर ली। ऐसा निश्चय हुआ कि मद्रास की जनता की ओर से 'विवेकानन्द स्वागत समिति' द्वारा प्रदेय अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में स्वामीजी का पहला व्याख्यान हो। इसके अतिरिक्त चार अन्य सभाओं में व्याख्यान देकर स्वामीजी अपने वक्तव्य की व्याख्या एवं विस्तार करें, स्वदेश तथा विदेश के प्रति अपना सन्देश स्पष्ट भाषा में व्यक्त करें और साथ ही यह भी समझा दें कि समकालीन परिवर्तित परिस्थितियों में भारत के आध्यात्मिक नवजागरण के लिए कौन से पथ का अनुसरण करना उचित होगा। उनके व्याख्यानों के निमित्त निम्नलिखित विषयों का चयन हुआ था—

(१) मेरी समर नीति
(२) भारत के महापुरुष
(३) भारतीय जीवन के साथ वेदान्त का सम्बन्ध
(४) भारत का भविष्य

इसके अतिरिक्त ट्रिप्लिकेन की साहित्य समिति में स्वामीजी ने 'हमारा प्रस्तुत कार्य' विषय पर एक व्याख्यान देना स्वीकार किया।

स्वामीजी जब ट्रेन द्वारा कुम्भकोणम से मद्रास की ओर आ रहे थे तो 'द हिन्दु' तथा 'द मद्रास मेल' आदि पत्रों के प्रतिनिधियों ने चिंगलपेट स्टेशन पर ट्रेन में चढ़कर उनसे भेंट की। स्वामीजी के साथ ट्रेन में चलते हुए उन संवाददाताओं ने उनके साथ जो चर्चा की, उसमें से निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—"जब भारत में ऐसे लोग जन्म लेंगे, जो देश के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार होंगे, जो दिल के सच्चे होंगे, तब भारत भी हर दृष्टि से महान हो जाएगा।... सभी समाज-सुधारक, या कम-से-कम उनके नेतागण अपने समस्त साम्यवादी सिद्धान्तों का एक धार्मिक या आध्यात्मिक आधार ढूढ़ने का प्रयास कर रहे हैं और वह आधार केवल वेदान्त में ही विद्यमान है।...नये भाव से समाज को गढ़ने के लिए वेदान्त को आधार के रूप में लेने की आवश्यकता है। भारत में इस जाति-प्रणाली का उद्देश्य सबको ब्राह्मण बनाना है—ब्राह्मण ही

मानवता का आदर्श है।...अन्त में सभी ब्राह्मण होंगे। यही है हमारी कार्य प्रणाली। किसी को नीचे नहीं उतारना है—सबको ऊपर उठाना होगा।...जनता को स्वयं ही समाज का सुधार, उन्नति आदि की चेष्टा करनी होगी।...इसके लिए लोगों को शिक्षा देनी पड़ेगी—ताकि वे स्वयं ही अपनी समस्याओं का समाधान कर सकें। अन्यथा ये सारे सुधार केवल हवाई किले ही रह जाएँगे। नयी प्रणाली है—अपने ही द्वारा अपनी उन्नति करना।...भारत को बाह्यप्रकृति पर विजय प्राप्त करना यूरोप से सीखना होगा और यूरोप को भारत से अन्तः प्रकृति पर विजय पाने का उपाय सीखना होगा। तब फिर न हिन्दू होंगे न यूरोपियन, और गठित होगा दोनों ही प्रकृतियों पर विजय प्राप्त करनेवाला एक आदर्श मानव समाज।"

मद्रास में एक अन्य संवाददाता के साथ चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था—"मेरे मतानुसार हमारे राष्ट्रीय पतन का मूल कारण है—हमारा अन्य राष्ट्रों के साथ मेलजोल न रखना।...हमें कभी पाश्चात्य लोगों के साथ अपने अनुभवों का मिलान करने की अवसर नहीं मिला। और हमलोग कूपमण्डूक वन गए।" ..."मुझे लगता है कि आम जनता की उपेक्षा ही हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप है और वह भी हमारे पतन का एक कारण है। जब तक भारतीय जनता का भलीभाँति पालन-पोषण एव शिक्षण नहीं होता, तब तक चाहे जितना भी राजनीतिक आन्दोलन किया जाय, कोई लाभ नहीं होगा। ...मेरी आशा उदीयमान युवा पीढ़ी में है। उन्हीं में से मुझे कार्यकर्त्ता मिलेंगे। ...मेरा मत है कि देश की जनता को उनका अधिकार प्रदान करने से ही वर्त्तमान भारत की समस्याओं का समाधान होगा। ...हमारी सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है—आत्मविश्वास; यहाँ तक कि ईश्वर में विश्वास होने के भी पूर्व सबको आत्मविश्वास लाना होगा। खेद की बात है कि हम भारतवासी दिन पर दिन यह आत्मविश्वास खोते जा रहे हैं।"

संवाददाताओं को दिए गए इन विचारों का ही उनके मद्रास के व्याख्यानों में विस्तार हुआ था, यहाँ तक कि भारत में अन्यत्र हुये व्याख्यानों में भी उन्हीं की पुनरुक्ति दिखाई पड़ती है। इस हिसाब से मद्रास के ये वार्तालाप एवं व्याख्यान विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। हम यहाँ पर जनकल्याण स्वामीजी की कार्य प्रणाली तथा उसके आधार पर ही चर्चा कर रहे हैं। शास्त्रीय विषयों की व्याख्या करते हुए उन्होंने जो कुछ कहा, उनकी हम यहाँ विवेचना नहीं कर रहे हैं।

मद्रास-अभिनन्दन के उत्तर में प्रथम दिन के अपूर्ण संक्षिप्त भाषण में उन्होंने कहा था—"संसार के सभी राष्ट्र दो महान समस्याओं के समाधानों में लगे हुए हैं। ...इन दोनों में से कौन विजयी होगा? ...जीवन में संग्राम प्रेम की जीत होगी या घृणा की, भोग की विजय होगी या त्याग की, जड़ की विजय होगी या चैतन्य की? ...यह महान राष्ट्र जिसे अनेक ऐसे दुर्भाग्यों खतरों तथा उथल-पुथल की समस्याओं में उलझना पड़ा है, जैसा कि संसार के किसी अन्य राष्ट्र को नहीं करना पड़ा—इसके बावजूद यह जीवित है, टिका हुआ है, क्योंकि इस राष्ट्र ने त्याग के पथ का अवलम्बन किया है; और त्याग के बिना धर्म भला कैसे रह सकता है?"

इसके बाद हुए 'मेरी समर नीति' व्याख्यान से निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान दिलाना उचित होगा—"मेरे पास दुनिया के लिए एक सन्देश है, जिसे मैं बिना किसी भय के या भविष्य को चिन्ता किये सबको दूँगा। सुधारकों से मैं

कहना चाहता हूँ कि मैं उनसे भी बढ़कर सुधारक हूँ। वे लोग बस इधर-उधर थोड़ा-सा सुधार करना चाहते हैं और मैं आमूल सुधार चाहता हूँ। ...उनकी प्रणाली ध्वंसात्मक है और मेरी संघटनात्मक। मैं सामयिक सुधार में नहीं, स्वाभाविक उन्नति में विश्वासी हूँ। ...राष्ट्रीय जीवन को पुष्टि के लिए उसे जो भी आवश्यक है दे दो, परन्तु वह अपनी ही प्रकृति के अनुसार विकसित होगा। किसी में भी ऐसी क्षमता नहीं कि वह उसकी उन्नति का मार्ग निर्दिष्ट कर सके। ...सामाजिक दोषों का प्रतिकार बाहरी प्रयासों के द्वारा नहीं होगा—इसके लिए मन पर कार्य करना होगा। ...प्रत्यक्ष रूप से इसके लिए प्रयास न कर शिक्षा के द्वारा परोक्ष रूप से इसके लिए प्रयास करना होगा।" समाज की उन्नति के लिए धर्म को और भी सबल करना होगा और यही प्राचीन महापुरुषों की कार्य प्रणाली थी। और चाहिए आत्मविश्वास का बल—"आज हमें आवश्यकता है लोहे के समान मांसपेशियों और वज्र के समान सुदृढ़ स्नायुओं की। हमलोग काफी काल से रोते आये हैं; अब और रोने की जरूरत नहीं। ...अपने उपनिषदों का—उस बलप्रद, आलोकप्रद दिव्य दर्शनशास्त्र का आश्रय लो और इन दुर्बल बनानेवाली रहस्यमय विद्याओं को त्याग दो ...लोग देश भक्ति की चर्चा करते हैं। ...बड़े कार्य करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। प्रथमतः हृदय से अनुभव करो। ...मान लिया कि देश की दुर्दशा की बात तुमने प्राणों में अनुभव की है, परन्तु मैं पूछता हूँ कि क्या तुमने इसके निवारण के लिए कोई उपाय सोचा है? ...परन्तु इतने से भी नहीं हुआ। क्या तुम पर्वताकार विघ्न-बाधाओं को लाँघकर कार्य करने को प्रस्तुत हो? ...इस समाज के विरुद्ध एक भी कठोर शब्द मत बोलना।"

'भारतीय जीवन पर वेदान्त का प्रभाव' दिखाते हुए स्वामीजी ने कहा—उपनिषदों के आधार पर भारत के सभी धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करना सम्भव है, फिर "यह विशेष रूप से स्मरण रखना होगा और सम्पूर्ण जीवन में मैंने यही शिक्षा पायी है—उपनिषद कहती हैं, हे मानव, तेजस्वी बनो, दुर्बलता का परित्याग करो। ...और उपनिषद शिक्षा देती हैं कि वह मुक्ति तुम्हारे भीतर पहले से ही विद्यमान है। ...पृथ्वी भर के लोग भारत से यह महान तत्त्व सीखने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं। ...व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से प्रत्येक व्यक्ति के भीतर देवत्व विद्यमान है।" यह कहकर स्वामीजी ने दिखा दिया कि इस तत्त्व को स्वीकार तथा उपयोग करने से समाज में वांछनीय परिवर्त्तन लाये जा सकते हैं। तदुपरांत वे बोले, "हमारे उपनिषदों का एक और महान भाव है—समग्र विश्व की अखण्डता, जिसे पाने के लिए संसार प्रतीक्षा कर रहा है।" स्वामीजी देश भक्त होकर भी ऐसी असम्भव बात में विश्वास नहीं रखते थे कि वर्तमान युग में विश्वप्रेम या विश्व के साथ आदान-प्रदान को छोड़कर भी भारत अपनी अलग निरपेक्ष सत्ता बनाये रख सकता है—"राजनीति एवं सामाजिक क्षेत्रों में भी बीस वर्ष पहले जो समस्याएँ केवल राष्ट्रीय थीं, आज केवल राष्ट्रीयता के आधार पर उन्हें हल नहीं किया जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर उदार दृष्टि के साथ विचार करके ही उन्हें हल किया जा सकता है। सबके भीतर यह एकत्व किस प्रकार फैलता जा रहा है, यही इसका प्रमाण है।" यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि उनके पूर्व ये बातें इतनी स्पष्ट भाषा में किसी भी भारतीय ने नहीं कही थी। और केवल राजनीतिक समस्याएँ ही नहीं, स्वामीजी ने दिखा दिया कि नीतिशास्त्र की समस्याओं की मीमांसा तथा उसके लिए युक्तिसंगत आधार भी एकमात्र उपनिषदों में से ही प्राप्य हैं।

'हमारा प्रस्तुत कार्य' इस व्याख्यान में उल्लेखनीय नवीन बातें निम्नलिखित हैं—"हमारे शास्त्रों में उपदिष्ट सभी विषयों का लक्ष्य है—अपनी क्षुद्र सीमा से बाहर निकलकर सबके साथ मिलना-जुलना, आपस में भावों का आदान-प्रदान करके अधिकाधिक उदार होते जाना और क्रमशः सार्वभौम भाव की उपलब्धि करना। ...आध्यात्मिक विश्वविजय से मेरा तात्पर्य जीवनप्रद विचारों के प्रचार से है, न कि उन सैकड़ों अन्धविश्वासों से जिन्हें हम शताब्दियों से सीने से चिपकाये हुए हैं, उन्हें तो भारतभूमि से उखाड़कर दूर फेंक देना चाहिए, ताकि वे सदा के लिए नष्ट हो जाएँ। ...हम लोग व्यक्ति-विशेष के मतानुयायी नहीं हैं, चिरकाल से ही हम धर्म के तत्त्वों के प्रति निष्ठावान रहे। व्यक्तिगण तो केवल उन तत्त्वों के साकार प्रतीक मात्र हैं। ...ब्रह्मानुभूति के विभिन्न सोपान हैं। ...ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। ...हमारा धर्म कहता है कि मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के हृदय में उसी सत्य का आविर्भाव हुआ था—एक या दो में नहीं, अनेकों में वह सत्य प्रकट हुआ था और भविष्य में भी होगा। ...धर्म वह है, जो हमें उस अक्षर पुरुष का साक्षात्कार कराता है और यही धर्म सबके लिए है।"

मद्रास के अन्तिम व्याख्यान 'भारत का भविष्य' में स्वामीजी ने कहा—"अमेरिका जाने के कई वर्ष पूर्व से ही मेरे मन में ये संकल्प थे—हमारे शास्त्र-ग्रन्थों में संचित, मठों एवं अरण्यों में गुप्त भाव से रक्षित तत्त्वों को मैं सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य कर देना चाहता हूँ। उन्हें बोलचाल की भाषा में इसकी शिक्षा देनी होगी, पर साथ ही संस्कृत की शिक्षा भी चलेगी। ...जातिभेद का वैषम्य दूर कर समाज में समता लाने का एकमात्र उपाय उस संस्कार एवं शिक्षा का अर्जन करना है, जो उच्च वर्गों का बल और गौरव है। ...सबसे पहले हमें अपने राष्ट्र की आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा का भार ग्रहण करना होगा। इस समय जो शिक्षा दी जाती है वह सम्पूर्णतया निषेध पर आधारित है। इस प्रकार की शिक्षा से अथवा निषेध पर आधारित किसी भी शिक्षा से सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। ...मस्तिष्क में कुछ ऐसी बातें ठूँस दी जाये, जो जीवन भर पचे बिना ही दिमाग में असम्बद्ध रूप से घूमती रहें—इसे शिक्षा नहीं कहते। विभिन्न भावों को इस प्रकार आत्मसात कर लेना होगा, जिससे हमारा जीवन गठित हो जाय, मनुष्य का निर्माण हो और चरित्र बन जाय।"

इसी व्याख्यान में स्वामीजी ने अपनी देशभक्ति एवं देशवासियों के प्रति प्रीति की पराकाष्ठा दिखाई थी; परन्तु यह सब धर्मभाव से ही प्रेरित था। उन्होंने अपने समस्त देशवासियों को पुकार कर कहा था—"आगामी पचास वर्षों के लिए हमारी जननी जन्मभूमि ही हमारी एकमात्र आराध्य बन जाय, कुछ काल के लिए हमारे मस्तिष्क से अन्य देवी-देवताओं के निकल जाने से भी कोई हानि नहीं होगी। समझ लो कि दूसरे सभी देवी-देवता सो रहे हैं। तुम्हारे स्वदेशवासी ही एकमात्र जाग्रत देवता हैं; सर्वत्र उनके हाथ हैं, सर्वत्र उनके कान हैं और वे सबमें व्याप्त होकर विद्यमान हैं। अपने सम्मुख एवं अपने चारों ओर दृश्यमान विराट् देवता की उपासना को छोड़कर, तुम किन निरर्थक देवताओं की खोज में भटक रहे हो? जब तुम इस देवता की उपासना कर लोगे, तभी तुममें अन्य देवी-देवताओं की पूजा करने की क्षमता आयेगी। ...जिसे देखा वही योगी बनने की धुन में है, जिसे देखो वही समाधि लगाने जा रहा है! ऐसा नहीं हो सकता। ...यह क्या हँसी-खेल है? ये सब वाहियात बातें हैं! आवश्यकता है तो चित्तशुद्धि की। कैसे होगी यह चित्तशुद्धि? इसके लिए सर्वप्रथम विराट् की पूजा करो; तुम्हारे

सम्मुख तथा तुम्हारे चारों ओर जो लोग हैं, उन्हीं की पूजा; इनकी पूजा करनी होगी—'सेवा' नहीं। सेवा शब्द से मेरा तात्पर्य ठीक-ठीक व्यक्त नहीं होता, पूजा शब्द ही इस भाव को यथार्थ रूप से व्यक्त करता है।"

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि मद्रास तक के उनके व्याख्यानों एवं वार्तालापों के बीच हमें उनके भारत की उन्नति सम्बन्धी विचार-धारा की प्रायः सभी मौलिक बातें स्पष्ट रूप से प्राप्त हो जाती है। संक्षेप में उनकी ये मौलिक बातें इस प्रकार है—

(१) धर्म के ऊपर कोई आघात पहुँचाये बिना भारतीय जनता को सर्वांगीण उन्नति का अवसर देना होगा। परन्तु धर्म केवल आचार में ही सीमाबद्ध न रहकर अनुभूति के ऐश्वर्य से मण्डित हो।

(२) अस्पृश्यता को दूर करना होगा। जाति भेद जन्मगत न होकर गुणगत हो।

(३) जिनमें सामर्थ्य हो, उन्हें पीड़ित जनता की सहायता करनी चाहिए ताकि देश की उन्नति विप्लव के पथ पर न चलकर क्रमोन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके।

(४) नारी-समाज के लिए उपयुक्त शिक्षा तथा आत्मोन्नति का पथ प्रशस्त कर देना होगा। सुशिक्षित नारियाँ स्वयं ही अपनी समस्याओं का समाधान कर लेंगी।

(५) वास्तविक शिक्षा को सर्वव्यापी बना डालना होगा और शिक्षा केवल पुस्तक पठन तक ही सीमित न रहकर चरित्र-निर्माण तथा आत्म-विकास के अनुकूल होगी।

(६) भौतिक विज्ञान तथा शिल्प कलाओं की शिक्षा तथा इन विषयों में उन्नति करना उचित होगा।

(७) समाज को धर्म के बन्धन में न रखकर उसके विकास का पथ उन्मुक्त कर देना होगा और इसके लिए अन्य देशों से आदान-प्रदान तथा विश्व-बन्धुत्व भाव का अवलम्बन करना आवश्यक है।

१५ फरवरी को प्रातःकाल स्वामीजी मद्रास में जहाज पर चढ़कर कलकत्ता के लिए रवाना हुए तथा १९ फरवरी को वहाँ पहुँचे। २८ फरवरी को एक सार्वजनिक सभा में उन्हें कलकत्ता-निवासियों की ओर से अभिनन्दित किया गया। इस अभिनन्दन के उत्तर में स्वामीजी ने जो व्याख्यान दिया वह माधुर्य, ओजयुक्त वाणी, भाव-गाम्भीर्य, स्वदेश प्रेम, भविष्य के लिए पथ निर्देश आदि के एकत्र समावेश की दृष्टि से अतुलनीय कहा जा सकता है। समकालीन भारतवर्ष ने स्वामीजी को एक देशभक्त महापुरुष के रूप में स्वीकार किया था और इस व्याख्यान ने उनके इन दोनों ही पक्षों को विशेष रूप से अभिव्यक्त कर इस धारणा की पुष्टि की थी। प्रारम्भ में ही उन्होंने कहा, "मनुष्य अपनी मुक्ति के प्रयास में जगत्-प्रपञ्च के साथ अपना सम्बन्ध पूर्ण रूप से तोड़ लेना चाहता है।...यहाँ तक कि वह साढ़े तीन हाथ का देहधारी मनुष्य है यह भी भूलने का यथासाध्य प्रयास करता है, परन्तु उसके अन्तरतम से सदा उठ रही एक मृदु अस्फुट ध्वनि उसे सुनाई देती है..., 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" तत्पश्चात अन्य बातों की चर्चा करने के बाद वे अपने गुरुदेव का उल्लेख करते हुए बोले, "यदि मनसा-वाचा-कर्मणा मैंने कोई सत्कर्म किया हो, यदि मेरे मुख से कोई ऐसी बात निकली हो, जिससे संसार के किसी भी मनुष्य का कोई उपकार हुआ हो, तो उसमें मेरा कुछ भी गौरव नहीं, वह उनका है। परन्तु मेरी जिह्वा से यदि

कभी अभिशाप की वर्षा हुई हो, यदि मेरे मुख से कभी किसी के प्रति घृणा का भाव निकला हो, तो वे मेरे हैं, उनके नहीं। जो कुछ दुर्बल है, दोष युक्त है, वह सब मेरा है; और जो जीवनप्रद है, बलप्रद है, पवित्र है, वह सब उनकी शक्ति है, उन्हीं का सन्देश है और वे स्वयं हैं।" स्वामीजी केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में प्राप्त प्रेरणा आदि के बारे में कहकर शान्त नहीं हुए, उन्होंने पूछा कि भारत के पुनर्जागरण हेतु जिस नवीन शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है, "यह किसकी शक्ति है? यह तुम्हारी शक्ति है या मेरी?" और फिर स्वयं ही उत्तर देते हुए वे बोले, "नही, यह किसी और की शक्ति नहीं है; जो शक्ति श्रीरामकृष्ण परमहंस रूप में आविर्भूत हुई थी, यह वही शक्ति है। ...इस समय हम उसी महाशक्ति की लीला का प्रारम्भ मात्र देख रहे हैं। और वर्तमान युग की समाप्ति के पूर्व ही आप लोग इसकी अद्भुत लीलाएं देख सकेंगे। जो प्राणशक्ति सर्वदा भारत को संजीवनी-शक्ति प्रदान करती आयी है और भविष्य में भी प्रदान करेगी, उसके बारे में हम लोग कभी-कभी भूल जाते हैं।" हम पहले ही देख आए हैं कि स्वामीजी के मतानुसार धर्म ही भारतीय जीवन का आधार है; कलकत्ता के व्याख्यान में यह बात और भी स्पष्ट रूप से कही गयी। मद्रास में कथित अन्य भी कुछ मौलिक बातों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए स्वामीजी ने कहा, "कलकत्ता के युवकों! उठो, जागो, शुभ मुहूर्त आ गया है। ...उठो, जागो, तुम्हारी मातृभूमि को इस महाबलि की आवश्यकता है। युवकों के द्वारा ही यह कार्य सिद्ध होगा।

कलकत्ता अभिनन्दन के कई दिन पश्चात् ४ मार्च को उन्होंने स्टार थियेटर में 'सर्वांग वेदान्त' विषय पर हृदय ग्राही तथा विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिया। कलकत्ता-अभिनन्दन के उत्तर में उन्होंने जो व्याख्यान दिया था, उससे उनके देशवासियों को उनके चरित्र के एक विशेष पक्ष का परिचय मिला था। उसमें स्वजाति एवं स्वदेश प्रेम और भारत के अभ्युदय के लिए उनके भावी कार्यप्रणाली आदि बातों को ही प्रमुखता मिली थी। अब 'वेदान्त' विषयक इस व्याख्यान ने जनता को उनकी धर्मानुभूति का आभास दिया और हिन्दू धर्म के मूलभूत तथ्यों से भी उनका परिचय कराया।

(रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित 'युगनायक विवेकानन्द' नामक ग्रन्थ से साभार संकलित)

मेरे साहसी युवको, यह विश्वास रखो कि तुम्हीं सब कुछ हो—महान् कार्य करने के लिए इस धरती पर आये हो। गीदड़-घुड़कियों से भयभीत न हो जाना—नहीं, चाहे वज्र भी गिरे, तो भी निडर हो खड़े हो जाना और कार्य में लग जाना।

—स्वामी विवेकानन्द

शुभकामना-संदेश

—श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

[रामकृष्ण मिशन की शतवर्ष-पूर्ति को पूर्व संध्या में कलकत्ता दूरदर्शन पर पूज्यपाद महाराज जो द्वारा दिये गये संदेश का यह हिन्दी रूपान्तर है।]

स्वामी विवेकानन्द के द्वारा रामकृष्ण मिशन की स्थापना ने भारतवर्ष तथा पृथ्वीभर के सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलन में एक नया दिगन्त उन्मोचित किया है। रामकृष्ण मिशन के भावादर्शों ने न केवल पाश्चात्य मनीषियों के मन में आन्दोलन छेड़ा है, बल्कि हमारे देश के भी संन्यासियों एवं जनसाधारणों की जीवन-यात्रा में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया है।

रामकृष्ण मिशन की कार्यधारा ने भारत के जनजागरण के क्षेत्र में पथप्रदर्शक की भूमिका ग्रहण की है। किन्तु रामकृष्ण मिशन एक समाज सेवी संगठन मात्र नहीं है, मिशन का मौलिक दृष्टिकोण आध्यात्मिक है तथा उसके साथ ही जनसाधारण की सेवा एवं विश्व का कल्याण-चिन्तन। इस संस्था का उद्देश्य है: सबके अन्दर अन्तर्निहित देवत्व की उपलब्धि के द्वारा दुःख एवं बन्धन से मुक्ति तथा इसके साथ ही मानव की सेवा को उपासना की दृष्टि से सम्पन्न करने की प्रेरणा प्रदान। रामकृष्ण मिशन के आदर्श के रूप में स्वामीजी ने जो मूलमन्त्र दिया था—"आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च", अपनी मुक्ति एवं जगत का कल्याण साधन, उसी के अन्दर यह भावादर्श निहित है।

पुनः रामकृष्ण मिशन विश्वव्यापी समन्वय का प्रतीक है—प्रतीक है सर्वधर्मसमन्वय का, जाति एवं संस्कृति के समन्वय का, धर्म एवं विज्ञान के समन्वय का तथा मनुष्य एवं प्रकृति के समन्वय का। इस पृथ्वी पर स्थायी शान्ति की प्रतिष्ठा करना इस समन्वय के द्वारा ही सम्भव है।

सौ वर्ष पहले स्वामीजी ने कलकत्ता के बलराम मन्दिर में बीजरूप से जो बोया था, "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" वही महान आदर्श आज एक विशाल वटवृक्ष में परिणत हुआ है। देश-विदेशों में स्थापित मिशन के विभिन्न शाखाकेन्द्रों के द्वारा मानव-मात्र के कल्याणार्थ स्वामीजी की सुमहान आशावाणी आज नीरवतापूर्वक पूरे विश्व में प्रचारित हो रही है:—

जिन लोगों की सहायता एवं सहयोगिता से रामकृष्ण मिशन वर्तमान अवस्था तक पहुँचा है उन सबों को मिशन की शतवर्ष-पूर्ति के उपलक्ष्य में मैं अपनी आन्तरिक शुभेच्छा देता हूँ। श्रीरामकृष्ण देव माँ सारदा देवी एवं स्वामीजी की कृपा से रामकृष्ण मिशन आनेवाले दिनों में सर्व-साधारण के सेवा-क्षेत्र को और भी प्रसारित कर सार्थक रूप से उसमें आत्मनियोग करने में समर्थ होगा।

☐

शुभेच्छा वाणी

—श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
महाध्यक्ष
रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

[रामकृष्ण मिशन की शताब्दी के शुभ अवसर पर कलकत्ता में नजरुल मंच पर १ मई, १९९७ को एक उद्‌घाटन सभा का आयोजन किया गया। सभा के प्रधान अतिथि थे भारत के माननीय उपराष्ट्रपति डा० के० आर० नारायणन। उक्त सभा में पूज्यपाद महाराज जी द्वारा प्रेषित अंग्रेजी संदेश का यह हिन्दी रूपान्तर है। रूपान्तरकार हैं—बेलुड़ मठ में कार्यरत स्वामी नित्यज्ञानानन्द —सं०]

रामकृष्ण मिशन इस पृथ्वी पर श्री रामकृष्ण के मिशन (दिव्य जीवन-व्रत) का प्रतीक है। मानव इतिहास के प्रधान अवनति-कालों में एक ऐसे समय में वे आविर्भूत हुए थे जब मताग्रही धर्मों में विश्वास का ह्रास हो रहा था तथा युक्ति एवं विज्ञान का उत्कर्ष हो रहा था। श्री रामकृष्ण मानव-जाति के लिए एक नये दर्शन, समन्वय, आत्मा की दिव्यता एवं साक्षात आध्यात्मिक अनुभव का एक नया संदेश लेकर आये।

स्वामी विवेकानन्द उन लोगों में से एक थे जिन्होंने श्री रामकृष्ण के संदेश के सार्वभौमिक तात्पर्य को सर्वप्रथम समझा था। स्वामीजी जानते थे कि भारत के भविष्य के लिए इस संदेश का विशेष महत्त्व है। अपने भारत-भ्रमण काल में भारतवासियों की गहन निर्धनता, पिछड़ापन एवं अज्ञानता को देखकर स्वामीजी बहुत ही विचलित हुए थे। उन्होंने अनुभव किया कि पददलित लोगों के लिए एक ऐसे जीवन्त संदेश की आवश्यकता है जो उनके अन्दर बल, आत्म-विश्वास एवं सेवा भाव का संचार कर उन्हें आत्म-निर्भर बना सके। स्वामी विवेकानन्द को यह स्पष्ट हो गया था कि भारतीय समाज की अति अव्यवस्थित अवस्था में एक शक्तिशाली संगठन के बिना कोई भी महान कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था: 'मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य एक ऐसे यन्त्र को चालू करना है जो प्रत्येक व्यक्ति के द्वार तक महान विचारों को ले जायेगा। फिर प्रत्येक नर-नारी अपना भाग्य-निर्धारण स्वयं करेंगे।" कोई भी संगठन इस तरह का यन्त्र तभी बन सकता है जब वह ऐसे लोगों के द्वारा बना हो जो सत्य, पवित्रता एव निःस्वार्थता के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध हों। कई विकल्पों पर विचार करने के बाद स्वामीजी ने एक ऐसे संगठन की परिकल्पना की जिसमें पहले से ही वर्तमान रामकृष्ण संघ के

संन्यासीगण समान भावापन्न जनसाधारण की सहयोगिता में समाज-सेवा का भार ग्रहण करेंगे।

एक सौ वर्ष बीत चुके हैं जब स्वामी विवेकानन्द ने बलराम बसु के मकान पर १ मई, १८९७ को श्री रामकृष्ण के संन्यासी एवं गृही भक्तों की एक सभा बुलाकर रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी। मुट्ठी भर लोगों को लेकर साधारण रूप से जिसकी शुरुआत हुई थी वही आज एक विश्व-व्यापी संस्था में परिणत हो चुका है। आज यह भारतवर्ष में समाज-सेवा के प्रत्येक क्षेत्र में एक प्रधान प्रभाव-शक्ति बन चुका है।

यहाँ रामकृष्ण मिशन की दो प्रधान विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है। पहली विशेषता यह है कि मानव की सेवा ईश्वर की पूजा समझी जाती है। द्वितीयतः धर्म, जाति, वर्ण अथवा राष्ट्रीयता आदि भेदभावों से रहित रामकृष्ण मिशन का द्वार सभी लोगों के लिए उन्मुक्त है।

परन्तु यह बात याद रखनी चाहिए कि रामकृष्ण मिशन सामाजिक संगठन के बदले प्रधानतः एक आध्यात्मिक संगठन है। इसका मुख्य कार्य मानव का आध्यात्मिक रूपान्तर करना है। इसीलिए स्वामीजी ने रामकृष्ण मिशन के लिए द्विविध आदर्श निर्धारित किया है: "आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" (अपनी मुक्ति के लिए तथा जगत के हित के लिए) मानव के आध्यात्मिक रूपान्तर के लिए स्वामीजी ने ज्ञान, भक्ति, योग एवं कर्म इन चारों योगों के समन्वय का मार्ग विहित किया है जो स्वयं स्वामीजी द्वारा अभिकल्पित रामकृष्ण मिशन के प्रसिद्ध प्रतीक (Emblem) के द्वारा सूचित हुआ है।

रामकृष्ण मिशन ने जो एक सौ वर्ष पूरा किया है वह आनेवाली शताब्दियों में इसके द्वारा किये जानेवाले महान कार्यों की अपेक्षा एक प्रारम्भ मात्र है। श्री रामकृष्ण, माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द की जिस शक्ति ने विगत वर्षों में मिशन को धारण कर रखा है वही शक्ति इसे भविष्य में भी धारण एवं मार्ग दर्शन करती रहेगी तथा विश्व के अधिक-से-अधिक लोगों के प्रति उनकी कृपा एवं प्रेम के प्रवाह का यह क्रमशः एक बेहतर माध्यम बनेगा।

रामकृष्ण मिशन की शताब्दी के उद्घाटन के शुभ अवसर पर मैं श्री रामकृष्ण, माँ सारदा एवं स्वामीजी से सभा की सफल परिसमाप्ति की प्रार्थना करता हूँ। इसमें भाग लेने वाले सभी लोगों के ऊपर उनका अनुग्रह हो!

मैं हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि हमारी जाति के कल्याण के लिए, हमारे देश की उन्नति के लिए तथा समग्र मानवजाति के हित के लिए वही श्रीरामकृष्ण परमहंस तुम्हारा हृदय खोल दें; और इच्छा-अनिच्छा के बावजूद भी जो महायुगान्तरण अवश्यम्भावी है, उसे कार्यान्वित करने के लिए वे तुम्हें सच्चा और दृढ़ बनावें।......उनकी अधीनता में कार्य करने का अवसर मिलना ही हमारे परम सौभाग्य और गौरव की बात है।

—स्वामी विवेकानन्द, वि० सा० ५ : २०६

नव भारत की गठन में विवेकानन्द

—स्वामी तेजसानन्द

मुक्तिमन्त्र का गायन करनेवाले स्वामी विवेकानन्द की शक्तिशाली विचारधारा ने निद्रा-मग्न भारतवासियों की नस-नस में प्रवाहित होकर नयी आशा-आकांक्षाओं और प्रेरणाओं को जन्म दिया। इसके फलस्वरूप हम देखते हैं भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवजागरण की हलचल तथा भारत का भाग्य गढ़ने के उद्देश्य से छोटी-बड़ी अनेक जातीय संस्थाओं का उद्भव। उन्हीं की प्रेरणा से भारत की पराधीनता के युग में सहस्र निःस्वार्थ युवक स्वदेश-मन्त्र से दीक्षित हो अदम्य उत्साह के साथ भारत के मुक्ति-संग्राम में कूद पड़े। इतना ही नहीं, वरन् उन्हीं की सर्जनशील प्रतिभा के प्रभाव से लुप्तप्राय भारतीय साहित्य, शिल्प, स्थापत्य, ललितकला, संगीत आदि भी फिर से जीवित हो उठे। जिस प्रकार विद्युदाधार में संचित विद्युत्शक्ति विभिन्न माध्यमों द्वारा प्रकाशित होकर सहसा चारों ओर प्रकाश फैला देती है, उसी प्रकार विवेकानन्द के कर्ममय जीवन एवं शक्तिमयी वाणी ने युगों से संचित तामसिकता को दूर कर जाति की सुप्त चेतना को जागृत कर दिया। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक इत्यादि सभी क्षेत्रों में आज उन्हीं के विप्लवी चिन्तन का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। भारत के इस बहुमुखी जागरण के मूल में विवेकानन्द की जो अमूल्य देन है, उसे स्वाधीनता-संग्राम के अन्यान्य पुरोहितगण भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं। स्वामीजी के देहावसान के बाद श्री अरविन्द ने लिखा है, "यदि किसी को भारत का विराट प्राणपुरुष माना जा सकता है, तो वह है एकमात्र विवेकानन्द—नरकेसरी विवेकानन्द। मैं देखता हूँ कि उनके प्रभाव ने भारत की आत्मा को आलोड़ित कर दिया है। हम तो कहेंगे कि विवेकानन्द आज भी अपने देशवासियों की आत्मा में जीवित हैं, देशजननी की सन्तानों की आत्मा में जीवित हैं।" बंगाली वीर नेताजी सुभाषचन्द्र ने अपने 'Indian Pilgrim' (भारत-पथिक) नामक ग्रन्थ में लिखा है, "स्वामी विवेकानन्द अपनी वीर-आकृति और उपदेश दोनों का पूर्ण विकसित व्यक्तित्व लेकर मेरे मानस में अवतीर्ण हुए थे। जो समस्याएँ अनिश्चित रूप से मेरे मन में उथल-पुथल मचा रही थीं तथा जिनकी जानकारी मुझे बाद में हुई, उनके सन्तोषजनक समाधान मैंने उनमें स्पष्ट देखे थे।" वर्तमान भारत के जनप्रिय प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने भी विवेकानन्द के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए कुछ दिन पहले कहा था, "यह ठीक है कि हम साधारणतः राजनीतिज्ञ शब्द से जो समझते हैं, वे (स्वामी विवेकानन्द) वह नहीं थे, पर मेरे विचार से तो वे भारत के वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् प्रवर्तकों में से थे। बाद में जिन बहुत से व्यक्तियों ने इस आन्दोलन में अल्पाधिक मात्रा में सक्रिय भाग लिया था, उन्होंने स्वामी विवेकानन्द से प्रेरणा पायी थी। स्वामीजी ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से आधुनिक भारत को बहुत अधिक प्रभावित किया है।"

आज आर्थिक साम्य को भित्ति बनाकर जो समाज-तन्त्रवाद भारत की भूमि पर प्रकट हो रहा

है तथा जिस आदर्श की नींव पर गणतान्त्रिक राष्ट्रगठन के कार्य में देश के नेतागण जुटे हुए हैं, उसका भी उज्ज्वल चित्र स्वामीजी के मानसपटल पर बहुत पहले ही अंकित हो चुका था। यद्यपि स्वामीजी ने अपने को 'समाजतन्त्रवादी' के रूप से घोषित किया था, पर उनकी समाजवाद की वह कल्पना आज के जड़वादियों के निरीश्वर साम्यवाद से मूलतः भिन्न थी। उन्होंने दृढ़ कण्ठ से कहा है—एकमात्र वेदान्त ही समाजतन्त्रवाद की युक्तिसंगत दार्शनिक भित्ति होने लायक है। वे कहते हैं, "मानवसमाज की उन्नति चाहनेवाले व्यक्तिगण, कम-से-कम उनके परिचालकगण, यह समझने का प्रयत्न कर रहे हैं कि उनके धनसाम्य एवं समान-अधिकार पर आधारित मतवादों की एक आध्यात्मिक भित्ति रहना संगत है, और एकमात्र वेदान्त ही यह भित्ति होने के योग्य है।" इस प्रसंग में उन्होंने और भी कहा है, "सामाजिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक—सभी क्षेत्रों में यथार्थ मंगल स्थापित करने का केवल एक सूत्र विद्यमान है, और वह सूत्र है केवल इतना जान लेना कि 'मैं और मेरा भाई एक हैं'। सब देशों में, सभी युगों में, सभी जातियों के लिए यह महासत्य समान रूप से लागू है।" उन्होंने वेदान्त के आत्मिक एकत्व पर आधारित साम्य को मानव-जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रयोग करने के लिए कहा है। वे कहते हैं, "अब व्यावहारिक जीवन में उसके प्रयोग का समय आया है। अब और उसे 'रहस्य' बनाये रखने से नहीं चलेगा। अब और वह हिमालय की गुहाओं में, वन-अरण्यों में साधु-संन्यासियों के पास न रहेगा; लोगों के दैनन्दिन जीवन में उसको कार्यान्वित करना होगा। राजा के महल में, साधु-संन्यासी की गुफा में, मजदूर की झोपड़ी में, सर्वत्र, सब अवस्थाओं में—यहाँ तक कि राह के भिखारी द्वारा भी—वह कार्य में लाया जा सकता है।"

उन्होंने एक ऐसी आदर्श राष्ट्रगठन की कल्पना की थी, जिसमें ब्राह्मण-युग का ज्ञान, क्षत्रियों की सभ्यता, वैश्यों की प्रसार की शक्ति तथा शूद्रों का साम्य-आदर्श—ये सब पूरी-पूरी मात्रा में बने रहेंगे, पर इनके दोष न रहेंगे। वे कहते थे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-युगों की प्रधानता अब अस्ताचल को चली गयी है; अब तो शूद्र-युग का आविर्भाव होगा; कोई उसे रोक नहीं सकेगा। इसीलिए उन्होंने ब्राह्मण आदि उच्च वर्णों को सम्बोधित करते हुए मर्मस्पर्शी भाषा में कहा है, "तुम लोग अपने को शून्य में लीन करके अदृश्य हो जाओ और अपने स्थान में 'नव भारत' का उदय होने दो। उसका उदय हल चलानेवाले किसानों की कुटिया से, मछुए, मोचियों और मेहतरों की झोपड़ियों से हो। बनिये की दूकान से, भड़भूँजे की भट्टी के पास से वह प्रकट हो। कारखानों, हाटों और बाजारों से वह निकले। वह 'नव भारत' अमराइयों और जंगलों से, पहाड़ों और पर्वतों से प्रकट हो।" आज भारत के गण-तान्त्रिक राष्ट्रगठन में हम क्या इसी का प्रतिबिम्व नहीं देखते? उन्होंने और भी कहा है, "मैं अपने मनश्चक्षुओं से देख रहा हूँ कि भावी सर्वांगपूर्ण भारत वैदान्तिक मस्तिष्क और इस्लामीय देह लेकर, इस विवाद-विशृंखला को चीरते हुए, महा-महिमान्वित और अपराजेय शक्ति से युक्त होकर जागृत हो रहा है।" अर्थात् वैदान्तिक जिस प्रकार जाति-धर्म का विचार न करते हुए सभी नर-नारियों को एक ही ब्रह्म की अभिव्यक्ति या आत्मस्वरूप समझता है, इसलाम-धर्म का अनुयायी, समाज की दृष्टि से, अपने धर्मावलम्बियों को उसी प्रकार भ्रातृभाव से देखता है और उनके साथ तदनुरूप व्यवहार करता है। कहना न होगा कि वेदान्त की आत्मिक एकता एवं अभेदत्व पर आधारित साम्य-मैत्री और समदर्शन तथा इसलाम का सामाजिक साम्य, भ्रातृत्व और समदर्शित्व ये

दोनों मिलकर एक सर्वांगपूर्ण भारत की सृष्टि करेंगे। समन्वयाचार्य श्रीरामकृष्ण की इसलाम-धर्म की साधना की सार्थकता भी इसी में स्पष्ट रूप से सूचित होती है। भारत में यह जो धर्म-निरपेक्ष ऐहिक (secular) गणतान्त्रिक राष्ट्र गठित हुआ है, जिसमें कि सभी धर्म अपनी-अपनी विशिष्टता की रक्षा करते हुए शान्तिपूर्वक रह सकते हैं, उसे यदि हम रामकृष्ण-विवेकानन्द के सर्वधर्म-समन्वय का ही राष्ट्रीय रूपायण कहें, तो यह कोई अत्युक्ति न होगी।

समाज के यथार्थ सुधार और उन्नति का मार्ग दिग्दर्शित करते हुए विवेकानन्द ने जो कहा है, वह सभी समाज-सुधारकों के विशेष मनन का विषय है। वे कहते हैं, "प्राच्य और पाश्चात्य देशों के आदर्श अलग-अलग हैं। भारत धर्ममुखी है, अन्तर्मुखी है; पाश्चात्य भूखण्ड बहिर्मुखी है। पाश्चात्य देश यदि धर्म के क्षेत्र में तनिक-सी भी उन्नति करना चाहता है, तो वह समाज की उन्नति के माध्यम से ही वैसा करेगा; और प्राच्य देश यदि सामाजिक क्षेत्र में थोड़ी-सी भी शक्ति हासिल करना चाहता है, तो वह धर्म के माध्यम से करेगा। ...आधुनिक सुधारकगण सबसे पहले भारत के धर्म को नष्ट कर देना चाहते हैं; उसके बिना उन्हें सुधार का कोई दूसरा मार्ग नहीं दिखता। उन्होंने उस दिशा में प्रयत्न भी किये हैं, पर विफल-मनोरथ हुए हैं। इसका क्या कारण है? —यही कि उनमें से केवल कुछ इने-गिने लोगों ने ही अपने धर्म का उत्तम रूप से अध्ययन और उसकी आलोचना की है, 'समस्त धर्मों के प्रस्रवण' को समझने के लिए जिस साधना की आवश्यकता होती है, उनमें से कोई भी उस साधना में से होकर नहीं गया है। मैं कहता हूँ, हिन्दू-समाज की उन्नति के लिए धर्म को नष्ट करने की जरूरत नहीं। ऐसी बात नहीं कि हिन्दू का धर्म प्राचीन रीति-नीति और आचार-प्रथाओं का समर्थन करता रहा है, इसीलिए उसके समाज की ऐसी दशा हुई है। समाज की इस दुरवस्था का कारण तो यह है कि धर्म को सामाजिक क्षेत्र में जिस प्रकार कार्यान्वित करना चाहिए था, वैसा नहीं किया गया। ...ऋषि-चरित्र, यथार्थ जीवन, जो शक्ति का केन्द्र तथा देवत्व और मानवत्व की मिलनभूमि है—वही राह दिखाएगा। इनको केन्द्र बनाकर ही भिन्न-भिन्न उपादान संघबद्ध होंगे और बाद में प्रचण्ड तरंग के समान समाज पर गिरकर सब कुछ बहा ले जाएँगे—सारी अपवित्रता दूर हो जाएगी। ...यह अवस्था, लोगों को अधिक धर्मनिष्ठ होने की शिक्षा देकर तथा समाज को स्वाधीनता देकर, धीरे-धीरे लानी होगी। प्राचीन धर्म से पुरोहित के इस अत्याचार और अनाचार को अलग निकाल दो—देखोगे, यही धर्म संसार का श्रेष्ठ धर्म है। ...वही समाज सर्वश्रेष्ठ है, जहाँ सर्वोच्च सत्य कार्यान्वित हो सकता है: यही मेरा मत है।" कहना न होगा कि विवेकानन्द-प्रवर्तित 'रामकृष्ण-संघ' स्वामीजी के इसी उदार आदर्श को भारत के जातीय जीवन के सभी क्षेत्रों में कार्यशील बनाने के लिए, नानाविध विघ्न-बाधाओं के बावजूद भी उनकी पताका को सुदृढ़ हाथों से धारण करके चला जा रहा है।

(रामकृष्ण संघ : आदर्श और इतिहास से साभार)

रामकृष्ण मिशनकी स्थापना

पाश्चात्य देशों से लौटने के बाद स्वामी विवेकानन्द आलमबाजार मठ अथवा बागबाजार (कलकत्ता) स्थित बलराम बसु के मकान में रहकर बड़े उत्साह के साथ युगधर्म का प्रचार करने लगे। इस कार्य को सुश्रृंखलित रूप से परिचालित करने के लिए श्रीरामकृष्ण भक्त-वृन्द को संघबद्ध करने के लिए उनके मन में बहुत समय से संकल्प हो रहा था। इस समय स्थिति को अनुकूल देखकर उन्होंने संघ की स्थापना करने का अभिप्राय व्यक्त किया। १८९७ ई० के १ मई को स्वामीजी के आह्वान पर श्रीरामकृष्णदेव के गृहस्थ एवं संन्यासी भक्तगण तीसरे प्रहर बलराम बाबू के मकान पर इकट्ठे हुए। दूसरी मंजिल के एक कमरे में सबके बैठे जाने पर स्वामीजी कहने लगे—"विभिन्न देशों में भ्रमण करने के बाद मेरे मन में ऐसी धारणा बनी है कि संघ के बिना कोई बड़ा कार्य नहीं हो सकता। परन्तु हमारे जैसे देश में प्रारम्भ से ही जनतांत्रिक आधार पर संगठन तैयार करना या (मतदान द्वारा) जनमत लेकर कार्य करना विशेष सुविधाजनक होगा, ऐसा नहीं लगता। उन सब (पाश्चात्य) देशों के नर-नारी अधिक शिक्षित हैं और हमारे समान द्वेषपरायण नहीं है। उन्होंने गुण का सम्मान करना सीख लिया है। यही देखिए न, मैं एक साधारण मनुष्य हूँ, तो भी उन लोगों ने मेरा कितना आदर-सत्कार किया। इस देश में भी शिक्षा फैलने के साथ-साथ जब सामान्य जन और भी सहृदय हो जाएँगे, जब अपने मत आदि के बाहर भी अपने विचारों का विस्तार करना सीखेंगे, तब जनतांत्रिक पद्धति से संघ को चलाया जा सकेगा। इसी कारण इस संघ के लिए एक डिक्टेटर या प्रधान संचालक होना चाहिए। सबको उनका आदेश मानकर चलना होगा।

"हम लोग जिनके नाम पर संन्यासी हुए हैं, आप लोग जिन्हें अपने जीवन का आदर्श बनाकर गृहस्थाश्रम रूपी कर्मक्षेत्र में स्थित हैं और जिनके देहावसान के बारह वर्ष के भीतर ही प्राच्य एवं पाश्चात्य जगत में जिनके पवित्र नाम तथा अद्भुत जीवन का आश्चर्यजनक रूप से प्रसार हुआ है, यह संघ उन्हीं के नाम पर स्थापित होगा। हम सब प्रभु के दास हैं, आप लोग इस कार्य में सहायक हों" (विवेकानन्द साहित्य खंड ६/पृ० ४५)

श्री गिरीशचन्द्र घोष आदि उपस्थित सभी लोगों द्वारा इस प्रस्ताव का अनुमोदन किए जाने पर रामकृष्ण संघ की स्थापना का निर्णय स्वीकृत हुआ और इसके बाद ५ मई को होनेवाली द्वितीय सभा में इसकी कार्यप्रणाली इत्यादि पर चर्चा तथा स्वीकृति हुई। इसका नाम हुआ 'रामकृष्ण प्रचार' समिति अथवा 'रामकृष्ण मिशन' एसोसिएशन। विवेकानन्दजी के संग में' ग्रन्थ के मतानुसार उस समय निश्चित की गयी कार्यप्रणाली इस प्रकार थी—

उद्देश्य—मानवमात्र के कल्याणार्थ श्रीरामकृष्ण ने जिन समस्त तत्त्वों की व्याख्या की है और उनके जीवन द्वारा व्यवहार में जो कुछ प्रतिपादित

हुआ है उनका प्रचार और ये समस्त तत्त्व जिस उपाय से मनुष्य के शारीरिक, मानसिक तथा पारमार्थिक उन्नति में सहायक हो सकें उसमें सहायता करना, यही इस संघ (मिशन) का उद्देश्य होगा।

व्रत—विश्व के सभी धर्ममतों को एक अक्षय सनातन धर्म के विभिन्न रूप जानकर सभी धर्मावलम्बियों के बीच आत्मीयता स्थापित करने के लिए श्रीरामकृष्ण ने जिस कार्य को प्रारम्भ किया था, उसी को चलाना इस संघ का व्रत होगा।

कार्यप्रणाली—मानवमात्र की सांसारिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए विद्यादान के उपयुक्त लोगों को शिक्षित करना, शिल्पियों एवं श्रमजीवियों को प्रोत्साहित करना और श्रीरामकृष्ण के जीवन द्वारा व्याख्यात वेदान्त तथा अन्य तत्त्वों का जनसमाज में प्रचार करना।

भारतीय कार्य—भारतवर्ष के हर नगर में आचार्य-व्रत ग्रहण करने के इच्छुक गृहस्थ तथा संन्यासियों के प्रशिक्षण हेतु आश्रम स्थापित करना और उपाय करना जिससे वे दूर-दूर तक जाकर जनता को शिक्षित कर सकें।

विदेशों में कार्य—भारतेतर देशों में व्रतधारियों को भेजना और उन देशों में स्थापित आश्रमों तथा भारतीय आश्रमों के बीच घनिष्ठता एवं सहानुभूति बढ़ाना और साथ ही नये नये आश्रमों की भी स्थापना करना।

स्वामीजी स्वयं ही उक्त प्रचार समिति के प्रधान अध्यक्ष हुए और स्वामा ब्रह्मानन्द तथा स्वामी योगानन्द कलकत्ता केन्द्र के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष हुए। एटार्नी बाबू नरेन्द्रनाथ मित्र इसके सचिव और डॉक्टर शशिभूषण घोष तथा बाबू शरच्चन्द्र सरकार सह-सचिव हुए। शरच्चन्द्र चक्रवर्ती महाशय को शास्त्र-पाठक नियुक्त किया गया। साथ ही यह भी नियम बनाया गया कि प्रति रविवार को अपराह्न में चार बजे बलराम बाबू के उसी ५७ नं० रमाकान्त वसु स्ट्रीट में समिति का अधिवेशन हुआ करेगा। कहना न होगा कि द्वितीय बार विदेश जाने तक स्वामीजी कलकत्ता में रहने पर यथारीति समिति के अधिवेशन में भाग लेते थे और उपदेश देकर अथवा अपने मधुर कण्ठ से भजन सुनाकर श्रोताओं को मुग्ध कर देते थे। यह साप्ताहिक सभा कुछ काल तक नियमित रूप से चली थी, परन्तु बलुड़ मठ की स्थापना के कुछ काल बाद समिति का कार्य बन्द हो गया। इसके काफी समय के पश्चात १९०९ ई० के अप्रैल में (१८६० ई० ऐक्ट २१ के अनुसार) कानूनी ढंग से 'रामकृष्ण मिशन' नाम से पंजीकरण कराकर इसे पुनर्जीवन तथा स्थायित्व प्रदान किया गया।

'विवेकानन्दजी के संग में' नामक ग्रन्थ में उद्धृत न होने पर भी समिति के उद्देश्य तथा कार्यप्रणाली में और भी दो अंश थे, जो निम्नलिखित हैं—

"मिशन का लक्ष्य एवं आदर्श चूँकि आध्यात्मिक तथा सेवापरक है, अतः राजनीति के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।

"उपरोक्त उद्देश्यों के साथ जिन लोगों की सहानुभूति है अथवा जिनका विश्वास है कि श्रीरामकृष्ण जगत में किसी विशेष कार्य के हेतु अवतीर्ण हुए, वे इस संघ के सदस्य हो सकेंगे।"

('युगनायक विवेकानन्द' से साभार)

रामकृष्ण मिशन का मूल-मन्त्र

—स्वामी नित्यज्ञानानन्द
बेलुड़मठ

सन् १८८४ ई० की बात है। एक दिन श्री रामकृष्ण दक्षिणेश्वर के अपने कमरे में भक्तों से घिरे बैठे थे। विविध वार्तालाप तथा बीच-बीच में सरल हास-परिहास भी हो रहा था। प्रसंगवश वैष्णव धर्म की बात उठी। उस मत का सारमर्म सब लोगों को संक्षेप में समझाते हुए श्रीरामकृष्ण ने कहा— "तीन विषयों का पालन करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहने का उपदेश उस मत में है—नाम में रुचि, जीव के प्रति दया और वैष्णवपूजन। जो नाम है, वही ईश्वर है···नाम नामी को अभिन्न जानकर निरन्तर अनुराग के साथ नाम लेना चाहिए। भक्त और भगवान, कृष्ण और वैष्णव को अभिन्न समझकर साधु-भक्तों की पूजा और वन्दना करनी चाहिए और कृष्ण का ही यह जगत्-संसार है, ऐसी धारणा हृदय में रखकर सब जीवों पर दया" (प्रकाश करनी चाहिए।) 'सब जीवों पर दया' कहते ही श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गये। कुछ क्षणों के अनन्तर अर्धबाह्य दशा में अवस्थित होकर कहने लगे, "जीव पर दया—जीव पर दया ? धत् तेरी, कीटाणु-कीट होकर तू जीव पर दया करेगा ? दया करनेवाला तू कौन है ? नहीं, नहीं, जीव पर दया नहीं—शिवज्ञान से जीव की सेवा।"

उस दिन नरेन्द्रनाथ (भावी स्वामी विवेकानन्द) भी वहाँ उपस्थित थे। भावाविष्ट श्रीरामकृष्ण की इन बातों का गूढ़ मर्म समझकर उन्होंने बाद में कहा था—"आज ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) की बात से कैसा अद्‌भुत प्रकाश दिखाई पड़ा ! जिस वेदान्त-ज्ञान को लोग शुष्क, कठोर और ममता रहित समझते हैं, उसे भक्ति के साथ सम्मिलित करके कैसे सहज, सरस और मधुर प्रकाश का उन्होंने प्रदर्शन किया है।···आज ठाकुर ने भावावेश में जैसा बताया उससे जाना गया कि वन के वेदांत को घर में लाया जा सकता है, संसार के सभी कार्यों में उसका प्रयोग किया जा सकता है। मनुष्य जो काम करते हैं करें, इसमें कोई हानि नहीं, केवल हृदय से यह सबसे पहले समझ लेना चाहिए कि ईश्वर ही जीव और जगत् के रूप में अपने सामने प्रकट होकर विराजमान हैं।······ इस रीति से सभी को शिव समझकर जीवों की सेवा करने से चित्त शुद्ध होकर थोड़े समय में अपने को चिदानन्दमय ईश्वर का अंश और शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव समझ सकेगा। ···भगवान ने यदि अवसर दिया तो आज जो सुना, इस अद्‌भुत सत्य का, संसार में सर्वत्र प्रचार करूँगा—पण्डित, मूर्ख, धनी, निर्धन, ब्राह्मण, चाण्डाल सभी को सुनाकर मुग्ध करूँगा।"

और ईश्वर ने नरेन्द्रनाथ को वह अवसर प्रदान किया। उन्हें लिखित आदेश प्राप्त हुआ—"नरेन शिक्षा देगा।" श्रीरामकृष्ण के देहत्याग के बाद परिव्राजक के रूप में भारत के कोने-कोने में भ्रमण कर उन्होंने पण्डित, मूर्ख, धनी, निर्धन, ब्राह्मण, चाण्डाल सभी को वह अमृतमयी वाणी सुनायी। उसके बाद वही सन्देश उन्होंने पाश्चात्य-वासियों को सुनाया। वहाँ से लौटकर पुनः भारत-वासियों को उक्त महामन्त्र में उद्‌बुद्ध करते हुए

उन्होंने कहा—"प्रत्येक नर-नारी को, सभी को ईश्वर-बुद्धि से देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम केवल सेवा कर सकते हो। प्रभु की सेवा करो।...तुम धन्य हो कि सेवा करने का अधिकार तुम्हें मिला है, जबकि औरों को वह नहीं मिला।...उसे पूजा की ही दृष्टि से देखो। मैं अपने सामने कुछ दरिद्र और पीड़ित व्यक्तियों को देखता हूँ, मैं अपनी मुक्ति के लिए उनके समीप जाऊँगा और उनकी पूजा करूँगा; वहीं ईश्वर का वास है।...यदि हम इन सारे अलग-अलग रूपों में प्रभु की सेवा कर सकें, तो यही हमारे तुम्हारे जीवन का सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य होगा।...ऐसे सत्कर्मो से चित्त शुद्ध होता है और सबके अभ्यन्तर में जिन शिव का वास है, वे प्रकाशित होते हैं।"

श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रदत्त महामन्त्र 'शिव ज्ञान से जीव सेवा' का विश्वभर में प्रचार करके ही स्वामीजी नहीं रुके। इसको कार्यरूप में परिणत करने के लिए उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और इसे मिशन का मूल-मन्त्र बनाया। आज रामकृष्ण मिशन इस महान आदर्श के प्रचार का केन्द्र ही नहीं, इसको कार्य में परिणत करने का एक यन्त्र-स्वरूप है।

रामकृष्ण-विवेकानन्द ने 'शिव ज्ञान से जीव सेवा' रूपी युगधर्म का केवल उपदेश ही नहीं किया बल्कि अपने जीवन में इसका अनुष्ठान कर हमारे सामने दृष्टान्त भी उपस्थापित कर गये हैं। यहाँ पर हम केवल दो-एक दृष्टान्तों का ही उल्लेख करेंगे।

भतीजे अक्षय के देहावसान के कुछ दिन बाद श्रीरामकृष्णदेव को साथ लेकर श्री मथुरबाबू ने अपनी जमींदारी तथा गुरुगृह की यात्रा की। मथुरबाबू की जमींदारी के क्षेत्रों में एक स्थान पर ग्रामवासी स्त्री-पुरुषों की दुर्दशा तथा अर्थाभाव को देखकर श्रीरामकृष्णदेव अत्यन्त दुःखित हुए तथा उनको आमंत्रित कर मथुरबाबू के द्वारा उन्हें सिर पर अच्छी तरह से लगाने के लिए तेल, एक-एक नवीन वस्त्र तथा पेट भरकर भोजन प्रदान कराया था। फिर किसी समय मथुरबाबू के साथ वाराणसी, वृन्दावन आदि तीर्थ दर्शन के निमित्त जाते समय वैद्यनाथ धाम के समीपवर्ती किसी गाँव के भीतर से जाते हुए वहाँ के निवासियों की दुःख-दुर्दशा को देखकर बाबा (श्रीरामकृष्ण) का हृदय उसी तरह करुणा से पूर्ण हो उठा था। उन्होंने मथुरबाबू से कहा, "तुम तो माँ के दीवान हो। इन सबको सिर में डालने के लिए तेल तथा प्रत्येक को एक-एक वस्त्र दो और पेटभर इन्हें एक दिन भोजन करा दो।" यह सुनकर मथुरबाबू सर्वप्रथम कुछ हिचकिचाने लगे। उन्होंने कहा, "बाबा, तीर्थों में बहुत खर्च उठाना पड़ेगा, इन लोगों की संख्या भी अधिक है—इन लोगों के भोजनादि की व्यवस्था करने पर आगे के लिए रुपयों में कमी पड़ सकती है। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए, यह आप ही बतलाएँ ?" किन्तु उनकी उस बात को कौन सुने ? ग्राम-वासियों का दुःख देखकर 'बाबा' के नेत्रों से उस समय अविरल अश्रुधारा बह रही थी, उनका हृदय करुणा से भर गया था। उन्होंने कहा, "दूर हो मूर्ख, मुझे तेरे काशीधाम नहीं जाना है। मैं इन्हीं लोगों के समीप रहूँगा; इनके कोई भी नहीं हैं, इनको छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा।" इतना कहकर बालक की तरह हठ करते हुए वे उन गरीबों के बीच में जाकर बैठ गये। उनके इस प्रकार करुणापूर्ण व्यवहार को देखकर मथुरबाबू ने तत्काल ही कलकत्ता से कपड़ा मँगवाकर 'बाबा' के कथनानुसार समस्त कार्यों को सम्पन्न किया। 'बाबा' भी ग्रामवासियों के आनन्द को देखकर स्वयं अत्यन्त आनन्दित हुए तथा उन लोगों से विदा लेकर हँसते-हँसते मथुर बाबू के साथ प्रस्थान किया।

अब स्वामीजी द्वारा अपने हाथ से किए हुए दरिद्र-नारायण-सेवा का एक उदाहरण दे रहा हूँ। १९०२ ई० के बिल्कुल प्रारम्भ की घटना है। मठ-भूमि की सफाई करने तथा मिट्टी काटने के लिए प्रति वर्ष की भाँति कुछ सन्थाल स्त्री-पुरुष आये थे। उनमें से पुरुषों के साथ मिलकर स्वामीजी उनके सुख-दुःख पर चर्चा करते तथा तरह-तरह से हास-परिहास भी किया करते। उनमें से एक का नाम केष्टा था। वह स्वामीजी का प्रिय पात्र तथा कामकाज में होशियार था। एक दिन स्वामी जी ने केस्टा से कहा, "अरे, तुम लोग हमारे यहाँ खाना खाओगे क्या ?" केष्टा के उत्तर दिया, "अब हम तुम लोगों का छुआ नहीं खाते। अब व्याह जो हो गया है। तुम्हारा छुआ नमक खाने से हमारी जात जाएगी रे बाप"। तो भी स्वामी जी बोले, "नमक क्यों खाएगा रे ? बिना नमक की तरकारी पका देंगे, तब तो खाएगा न ?" केष्टा इस पर राजी हो गया। बाद में स्वामीजी के आदेश पर सन्थाल लोगों के लिए पुड़ी, तरकारी, मिठाई, दही आदि की व्यवस्था हो गयी और वे सामने बैठकर उन्हें तृप्तिपूर्वक खिलाने लगे। खाते-खाते केष्टा ने कहा, "हाँ रे स्वामी बाप, तुमने ऐसी चीजें कहाँ से पायीं ? हमने तो कभी ऐसा नहीं खाया।" स्वामीजी ने उन्हें भरपेट भोजन कराने के बाद कहा, "तुम लोग नारायण हो। आज मेरा नारायण को भोग देना हुआ।"

भोजन के उपरान्त संथाल लोगों के चले जाने पर स्वामीजी ने शिष्य शरत् बाबू से कहा, "इन्हें देखा ! मानो साक्षात् नारायण हैं—ऐसा सरलचित्त, ऐसा निष्कपट सहज प्रेम पहले कभी नहीं देखा।" तदन्तर मठ के संन्यासियों की ओर उन्मुख होकर वे बोले, "देखो, वे लोग कैसे सरल हैं ! इनके दुःख थोड़ा दूर कर सकोगे ? परहिताय सर्वस्व अर्पण—उसी को सच्चा संन्यास कहते हैं।

रामकृष्ण-विवेकानन्द के इसी पदांक का अनुसरण कर 'शिव ज्ञान से जीव सेवा' के महामंत्र में दीक्षित होकर रामकृष्ण मिशन के संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं अनुयायी आज न केवल जगत का अशेष कल्याण कर रहे हैं बल्कि अपनी मुक्ति का द्वार भी उन्मुक्त कर रहे हैं। इसीलिए तो स्वामी जी ने रामकृष्ण मिशन का ध्येय रखा था—"आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" अर्थात् अपनी मुक्ति एवं जगत का कल्याण साधन। और इस ध्येय की प्राप्ति का उपाय निर्धारित किया—"शिव ज्ञान से जीव सेवा।" आइए, हम सभी, श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदर्शित इस महान् सेवाव्रत का पालन कर अपने जीवन को धन्य एवं सार्थक बनाएँ।

आप तो ईश्वर की सन्तान हैं, अमर आनन्द के भागी हैं। पवित्र पूर्ण आत्मा हैं। आप इस मर्त्यभूमि पर देवता हैं। आप भला पापी ? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है...। आप उठें ! हे सिंहो ! आयें, और इस मिथ्या भ्रम को झटककर दूर फेंक दें कि आप भेड़ हैं। आप हैं आत्मा अमर, आत्मा मुक्त, आनन्दमय और नित्य !

—स्वामी विवेकानन्द, वि० सा० १ : १२

रामकृष्ण मिशन के सौ वर्ष

—स्वामी शिवप्रदानन्द
रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, पुरुलिया

यह रामकृष्ण मिशन का शतवर्ष है। आज से एक सौ वर्ष पहले स्वामी विवेकानन्द ने इसकी स्थापना की थी। श्री रामकृष्ण ने स्वामी विवेकानन्द के हृदय में लोक-कल्याण की जो ज्योति जलायी थी वही ज्योति रामकृष्ण मिशन के माध्यम से चारो दिशाओं में फैलकर विगत एक सौ वर्ष से सम्पूर्ण जगत् को आलोकित कर रही है, अनगिनत नर-नारियों को अज्ञान-अंधकार से ज्ञानालोक की ओर, असत् से सत् की ओर, मृत्यु से अमृतत्व की ओर ले जा रही है। दूसरे शब्दों में हम यों कहें; रामकृष्ण की करुणा रूपी गंगा रामकृष्ण मिशन की बहुमुखी कर्मधाराओं के माध्यम से एक सौ वर्षों से सम्पूर्ण पृथ्वी को प्लावित कर रही है, अपनी स्निग्ध, शीतल वारि से असंख्य मनुष्यों के जीवन में सुख, शांति एवं समृद्धि प्रदान कर रही है। इस रामकृष्ण-करुणा-गंगा के भगीरथ हैं—स्वामी विवेकानन्द। आइए, रामकृष्ण मिशन की शतवर्ष-पूर्ति के अवसर पर हम सभी इस करुणा-गंगा में अवगाहन करें तथा याद करें उस भगीरथ प्रयास की, उस कठोर तपस्या को, जिसके कारण यह गंगा इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई है।

सबसे पहले हम आपको भगवान् विष्णु के पादपद्मों में ले जाते हैं, जहाँ से यह सुरसरि निकली है। सन् १८८६ ई० की बात है। भगवान् श्रीरामकृष्ण उस समय काशीपुर के उद्यान-भवन में अवस्थान कर रहे थे। युगधर्म की स्थापना करके तथा अपने भावी सन्देश-वाहकों को, जिनमें नरेन्द्रनाथ अग्रगण्य थे, आवश्यक शिक्षा-दीक्षा देकर वे इस संसार से अन्तर्धान होने के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। गुरुदेव अपनी लीला-संवरण करने वाले हैं—यह जानकर नरेन्द्रनाथ अध्यात्म-जीवन के अन्तिम शिखर तक पहुँचने के लिए अधीर हो उठे, उनका मन निर्विकल्प समाधि में लीन होने के लिए छटपट करने लगा। उनकी इस अवस्था को देखकर अन्त में श्री रामकृष्णदेव ने कहा, "अच्छा, तू क्या चाहता है, ? बोल" ? नरेन्द्र ने कहा, "मेरी इच्छा है कि गुरुदेव के समान लगातार पाँच-छः दिनों तक समाधि में डूबा रहूँ, उसके बाद केवल देहरक्षा के लिए कुछ क्षण नीचे उतरकर आऊँ और पुनः समाधि में चला जाऊँ ?" लोक-कल्याण ही जिनके जीवन का व्रत होनेवाला था उनके मुख से ऐसी बातों को सुनते ही श्रीरामकृष्ण ने गम्भीर स्वर से धिक्कारते हुए कहा—"छिः छिः, तू इतना बड़ा आधार है और तेरे मुँह से ऐसी बात ! मैंने सेसा सोचा था, कहाँ तू एक विशाल वटवृक्ष के सदृश होगा, तुम्हारी छाया में हजार-हजार लोग विश्राम पायेंगे और वैसा न होकर कहाँ तू केवल अपनी मुक्ति चाहता है। यह तो अत्यन्त तुच्छ बात है ! नहीं रे, इतनी छोटी दृष्टि मत रख।" इस प्रकार के तिरस्कार से नरेन्द्र की आँखों से अजस्र अश्रु-धारा बहने लगी और उन्होंने समझा कि उनके गुरुदेव का हृदय कितना महान है। किन्तु उनकी आकांक्षा पूर्ण हुई। कुछ दिनों के बाद ही एक बार वे संध्या के उपरान्त निर्विकल्प भूमि में आरूढ़ हो गये। रात के एक प्रहर के बाद नरेन्द्र जब

स्वाभाविक अवस्था प्राप्त कर श्रीरामकृष्ण के पास आये तो उन्होंने कहा—"कैसा ! माँ ने तो आज तुम्हें सब दिखा दिया। किन्तु, चाभी मेरे ही पास रही। अभी तुम्हें काम करना होगा। जब मेरा काम पूर्ण हो जायगा तव ताला खोल दिया जायगा।" किसी दूसरे अवसर पर श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र से कहा था, "माँ तुझे अपने काम के लिए संसार में खींच लायी है, तुझे मेरा अनुसरण करना ही होगा, तू जाएगा कहाँ ?"

लीला-संवरण के कई दिनों पूर्व से ही श्री रामकृष्ण प्रत्येक संध्या को नरेन्द्र को अपने पास बुलाते तथा अन्य शिष्यों को वाहर जाने को कह कर दो-तीन घण्टों तक बन्द कमरे में भावी कार्यों के सम्बन्ध में उपदेश देते। क्रमशः महासमाधि के तीन-चार दिन मात्र शेष रह गए हैं, यह जानकर एक दिन उन्होंने नरेन्द्र को बुलाकर अपने सामने बैठाया और एकटक उनकी ओर देखते हुए समाधिस्थ हो गए। बाद में नरेन्द्रनाथ कहा करते थे कि उन्हें ऐसा अनुभव हुआ था मानो विद्युत प्रवाह का एक सूक्ष्म ज्योतिकुंज उनके शरीर के भीतर प्रविष्ट होता जा रहा है। अन्त में वे भी अपना बाह्यज्ञान खो बैठे थे। कितनी देर इस प्रकार वीत गयी इसे वे समझ नही पाये। चेतना लौटने पर उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण के नेत्रों से अश्रुप्रवाह चल रहा है। इससे चकित होकर ऐसा करने का कारण पूछने पर श्रीरामकृष्ण ने कहा, "तुझे अपना सर्वस्व देकर आज मैं फकीर हो गया। तू उस शक्ति द्वारा जगत का बहुत सारा कार्य सम्पन्न करेगा और कार्य समाप्त होने पर अपने मूल स्थान को लौट जाएगा।" यह सुनकर नरेन्द्रनाथ भी बच्चे की भाँति रोने लगे—उद्वेलित भावावेग से कण्ठ रुद्ध हो जाने के कारण उनके मुँह से कोई शब्द नहीं निकला। लीला-संवरण के दो दिन पहले उन्होंने नरेन्द्र को फिर कहा, "देखो नरेन, तेरे हाथों में इन सब (त्यागी-बालकों) को दिये जाता हूँ, क्योंकि तू सबसे बुद्धिमान और शक्तिशाली है। इन्हें खूब प्यार करना। जिससे और घर नहीं लौटकर एक स्थान में रहकर ये सब साधन-भजन में खूब मन लगा सकें, इसकी व्यवस्था करना।"

गुरुदेव के आदेश, आशीर्वाद एवं शक्ति को धारण कर उनके लीला संवरण के बाद स्वामी विवेकानन्द ने परिव्राजक के रूप में दीर्घ पाँच वर्षों तक सारे भारत का भ्रमण किया। वे भारत के धनी-निर्धन, राजा-प्रजा, किसान-मजदूर, ब्राह्मण-शूद्र, शिक्षित-अशिक्षित—सभी वर्गों के लोगों से मिले। भारत के निर्धन व अज्ञान के अन्धकार में पड़े असंख्य नर-नारियों को देखकर वे व्यथित हो उठे। कन्याकुमारी में समुद्र के बीच एक शिलाखण्ड पर बैठकर उन्होंने एक योजना बनायी। उन्हीं के शब्दों में—"····भाई, यह सब देखकर—खासकर देश का दारिद्र्य और अज्ञता को देखकर मुझे नींद नहीं आती। कन्याकुमारी में, माता-कुमारी के मन्दिर में बैठकर, भारत की अन्तिम शिला पर बैठकर, मैंने एक योजना सोच निकाली।···यदि कुछ निःस्वार्थी परोपकारी संन्यासी गाँव-गाँव घूमकर विद्यादान करें और विभिन्न उपायों से मानचित्रों, नक्शों, कैमरों, भू-गोलकों की सहायता से चाण्डाल तक सबकी उन्नति के लिए प्रयत्न करें तो क्या समय पर इससे मंगल नहीं होगा ?" ···इसके लिए पहले लोग चाहिए, फिर धन। गुरु की कृपा से मुझे हर शहर में दस-पन्द्रह आदमी मिल जाएँगे। मैं धन की चेष्टा में घूमा पर भारत के लोग क्या धन देंगे !! ···इसीलिए मैं अमेरिका आया हूँ; स्वयं धन कमाऊँगा और तब देश लौटकर अपने जीवन के इस एकमात्र ध्येय की सिद्धि के लिए अपना जीवन न्योछावर कर दूँगा।"

पाश्चात्य-विजय करके भारत-प्रत्यावर्तन करने के कुछ ही दिनों बाद स्वामी विवेकानन्द ने अपनी उपर्युक्त योजना को मूर्तरूप देने के लिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। श्रीरामकृष्ण के जीवन एवं वाणी का विश्वभर में प्रचार करने तथा भारतवर्ष में सेवा, शिक्षा आदि लोक-कल्याणकारी कार्यों का विस्तार करने के लिए उन्होंने एक संगठन की आवश्यकता का अनुभव किया था। तदनुसार १ मई, १८९७ ई० को बाग-बाजार के बलराम बसु महाशय के भवन में श्रीरामकृष्ण के गृही एवं संन्यासी शिष्यों को एक सभा में स्वामीजी ने रामकृष्ण मिशन की प्रतिष्ठा की। संक्षेप में, मिशन की कार्यप्रणाली निम्नलिखित है—

(१) सभी धर्मों को एक ही सनातन धर्म के विकास समझकर विभिन्न-धर्मावलम्बियों के बीच एकता एवं भ्रातृत्व स्थापित करना;

(२) श्रीरामकृष्णदेव के महत् जीवन एवं सार्वजनीन शिक्षा के आलोक में जनसाधारण में वेदान्त एवं अन्यान्य धर्मों के प्रकृत आदर्श का प्रचार करना;

(३) उन्नतचरित्र कार्यकर्त्ता तैयार करना, जो विज्ञान एवं अन्यान्य विषयों में पारंगत होकर जन-साधारण को भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए आत्मोत्सर्ग करेंगे;

(४) जाति-धर्म का विचार न करते हुए नर-नारायण बुद्धि से आर्तों की सेवा में अपने को लगा देना; तथा

(५) भारत के शिल्प, साहित्य, ललितकला आदि की उन्नति और विस्तार करना।

रामकृष्ण मिशन के वैशिष्ट्य के सम्बन्ध में पाश्चात्य मनीषी रोमाँ रोलाँ ने विवेकानन्द की जीवनी में लिखा है—"स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित संघ का निश्चित तौर पर सामाजिक, मानवीय एवं सार्वजनीन प्रचार-स्वरूप सुस्पष्ट है। विवेक-विचार के प्रति आस्था तथा आधुनिक जीवन के गुरुत्व एवं प्रयोजनीयता का विरोध करने के बदले, जैसा कि अधिकांश-धर्म करते हैं, इस संघ ने विज्ञान के साथ अग्र भाग में अपना स्थान ग्रहण किया है। यह भौतिक एवं आध्यात्मिक-उभयविध प्रगति के साथ सहयोग में आग्रही तथा कला एवं उद्योग के प्रसार में उत्साही है। इसका वास्तविक उद्देश्य जनगण का मंगल विधान करना है।" स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में रामकृष्ण मिशन का चरम उद्देश्य है—"आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च", अर्थात् आत्मा की मुक्ति एवं जगत् का कल्याण करना तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति का उपाय है-- "शिवज्ञान से जीव सेवा।" नरेन्द्रनाथ ने अपने गुरुदेव के पास सुना था—"जीव पर दया नहीं—शिवज्ञान से जीव सेवा", "मिट्टी की मूर्ति में ईश्वर की पूजा होती है तथा जीवन्त मनुष्य में क्या उनकी पूजा नहीं हो सकती ?", "आँखें मूँदने पर ही भगवान हैं और आँख खोलने पर क्या वे नहीं हैं ?" आज इन्हीं उपदेशों को उन्होंने व्यावहारिक रूप दिया। रामकृष्ण के लोक कल्याण-कारी संदेश रामकृष्ण मिशन के रूप में मूर्त हो उठे। अपनी दीर्घकाल से पोषित कल्पना को सफल होते देख स्वामीजी ने राहत की साँस ली। गुरुदेव ने उनके कंधों पर जो गुरु दायित्व सौंपा था, आज मानो उसकी परिसमाप्ति हो रही हो। ९ जुलाई, १८९७ ई० को मेरी हेल के नाम अपने पत्र में उन्होंने लिखा—"केवल एक चिन्ता मेरे मस्तिष्क में दहक रही थी—वह यह कि भारतीय जनता का उन्नयन करने वाले यन्त्र को चालू कर दूँ और इस कार्य में मुझे कुछ हद तक सफलता मिली है। यह देखकर तुम्हारा हृदय आनन्द से फूल उठता कि किस तरह मेरे लड़के अकाल, रोग और पीड़ा

के बीच काम कर रहे हैं—हैजे से ग्रस्त शूद्र की चटाई के पास बैठे उसकी सेवा कर रहे हैं, भूखे चाण्डाल को भोजन करा रहे हैं—और प्रभु मेरी और इन सबकी सहायता कर रहे हैं।"

प्रारम्भ में रामकृष्ण मिशन की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्य स्वामी योगानन्द सहित कई अन्य लोगों ने संदेह व्यक्त किया था। इस तरह की संस्था की स्थापना श्रीरामकृष्ण के आदर्श के अनुरूप है या नहीं, इसको लेकर वे असमंजस में थे। स्वामीजी जानते थे कि इस प्रश्न की जवाबदेही उन्हें करनी पड़ेगी। स्वामीजी के सटीक जवाब के ऊपर निर्भर था उनके द्वारा प्रवर्तित कर्मयज्ञ का भविष्य। युक्ति-तर्क एवं प्रेम-मन्त्र का प्रयोग करके स्वामीजी ने अपने गुरुभाइयों को विश्वस्त किया था कि रामकृष्ण मिशन की स्थापना श्रीरामकृष्ण के आदर्शों के अनुरूप ही है। अध्यापक शंकरी प्रसाद ने और भी सही ढंग से कहा है, "(स्वामीजी ने) अपने अन्दर रामकृष्ण का प्रकाश दिखाकर" संशय का निराकरण किया था। अतएव वे स्वामीजी की इच्छा को श्रीरामकृष्ण का ही आदेश समझकर उत्साह के साथ विभिन्न कर्मक्षेत्रों में उतर पड़े। निष्ठावान पुजारी रामकृष्णानन्द को आलमबाजार मठ के शान्त पूजागृह से भेज दिया गया मद्रास में कोलाहल पूर्ण कर्मों के बीच। तपस्वी शिवानन्द एवं स्वामी तुरीयानन्द को जाना पड़ा क्रमश: श्रीलंका एवं कैलिफोर्निया (अमेरिका)। प्रेमानन्द एवं योगानन्द मठ छोड़कर कहीं नहीं गये, किन्तु मठ ही हो गया था समाज। श्री श्रीमाँ एवं बेलुड़ मठ में श्रीरामकृष्णदेव की सेवा का महान उत्तर-दायित्व क्रमश: योगानन्द एवं प्रेमानन्द के कंधों पर पड़ा था। रामकृष्ण मिशन की प्रतिष्ठा के पहले ही सारदानन्द एवं अभेदानन्द पाश्चात्य देशों में प्रचार-कार्य करने के लिए चले गये थे। मिशन की प्रतिष्ठा के बाद 'नेता नरेन' की आज्ञानुसार मिशन के महासचिव के रूप में सारदानन्द ने दीर्घ २८ वर्षों तक दक्षतापूर्वक कार्य-संचालन किया था। उसी प्रकार अमेरिका में वेदान्त-प्रचार कार्य में अभेदानन्द ने उतना ही समय व्यतीत किया था। 'उद्बोधन' पत्रिका (बंगला मासिकी) के प्रथम सम्पादक त्रिगुणातीतानन्द के कठोर परिश्रम की बात सर्वविदित है। ब्रह्मानन्द के ऊपर सब प्रकार के दायित्व थे। विज्ञानानन्द एवं अद्वैतानन्द की देखरेख में बेलुड़ मठ का निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ। सुबोधानन्द एवं अद्भुतानन्द का नीरव रामकृष्ण-प्रचार स्मरणीय है। निरंजनानन्द के उत्साह एवं प्रेरणा से युवकों ने सेवाश्रमों की स्थापना की। अखण्डानन्द के द्वारा मुर्शिदाबाद में किया गया अकाल राहत-कार्य तो अतुलनीय है। श्रीरामकृष्ण के उपर्युक्त शिष्यों के कर्मपथ का अवलम्बन करके रामकृष्ण-करुणा-गंगा इस पृथ्वी पर प्रवाहित होने लगी।

श्रीरामकृष्ण की अथक सुदीर्घ साधना के फल से भारत की जो सुप्त अध्यात्म-चेतना प्रबुद्ध हुई थी, वह रामकृष्ण एवं नरेन्द्र के ऐतिहासिक मिलन के फलस्वरूप रामकृष्ण-संघ के रूप में मूर्त हो उठी। इस संघ के गठन में श्री सारदा देवी का आविर्भाव एक अलौकिक घटना है। श्रीरामकृष्ण जिस सत्य के द्रष्टा और प्रतिपादक थे, विवेकानन्द (नरेन्द्र) उसके प्रवक्ता और प्रचारक थे तथा श्रीसारदा देवी का जीवन उसी का आदर्श विग्रह स्वरूप था। संघ की सृष्टि स्वयं श्रीरामकृष्ण ने की, उसके परिपालन का भार माता सारदामणि ने अपने ऊपर लिया और नरेन्द्र के हिस्से में उसके परिवर्धन का गुरु दायित्व पड़ा। समग्र मानव-जाति के विशेष प्रयोजन की पूर्ति के लिए एक ही महाशक्ति का यह त्रिविध प्रकाश है। श्रीरामकृष्ण के लीला-संवरण के बाद लगभग चौंतीस वर्ष तक

माँ सारदा देवी संघ-जननी के रूप में संन्यासियों को संघ-संचालन में सभी प्रकार से प्रेरणा देती रहीं, संकट की घड़ियों में अपने मातृ-स्नेह से उनकी रक्षा की। स्वामी विवेकानन्द इन्हीं संघ-जननी का आशीर्वाद सिर पर धारण करके विदेश-विजय के लिए बाहर निकले थे।

रामकृष्ण मिशन के राहत-सेवा-कार्य के प्रथम पुरोधा थे स्वामी अखण्डानन्द। स्वामीजी के सेवा-दर्श से प्रेरित होकर, उन्हीं की योजना तथा उन्हीं की आर्थिक सहायता से स्वामी अखण्डानन्द ने मुर्शिदावाद जिले के अकाल-पीड़ितों के दुःख कष्ट से व्यथित होकर अकाल-राहत-कार्य का आरम्भ किया। इस प्रकार आरम्भ हुआ रामकृष्ण मिशन का व्यवस्थित सेवाकार्य। अन्य संस्थाओं की ओर से भी सेवा कार्य होते हैं, लेकिन रामकृष्ण मिशन के सेवाकार्य का एक विशेष तात्पर्य भारतवर्ष ने अनुभव किया। 'शिव ज्ञान से जीव सेवा'—मानव मात्र में एक ही आत्मा को स्वीकार कर मानवता की एक नयी सुदृढ़ भित्ति का आविष्कार किया था रामकृष्ण मिशन ने। जाति, धर्म एवं वर्ण के आधार पर कोई भेद-भाव न कर प्रत्येक मानव को ईश्वर समझकर उसकी सेवा करना—यही रामकृष्ण मिशन का सेवादर्श है। मानव-प्रेम केवल मौखिक वचन नहीं, हृदय का संगीत है। अखण्डानन्द, सदानन्द, कल्याणानन्द, निश्चयानन्द, विरजानन्द, भगिनी निवेदिता आदि जिस समय प्राण का प्रदीप जलाकर भारतवर्ष को आलोकित कर रहे थे उस समय भारत-भारती ने नमन किया था उनके प्राण-पुरुष स्वामी विवेकानन्द को। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं संवादपत्रों में रामकृष्ण मिशन के सेवा-कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी थी। १९१४ ई० में ब्रह्मवादिन पत्रिका में श्रीमती एनी बेसंट ने लिखा था—"रामकृष्ण मिशन के अनेक केन्द्रों से जो सेवा-कार्य किये जा रहे हैं, वे स्वामीजी के ही कार्य हैं…उन कार्यों के भीतर से ही वे आधुनिक भारत में मूर्तिमान हो रहे हैं।…जब मैं साहसी, शक्तिशाली एवं सत्यशील युवकों को सेवा-भाव से अनुप्राणित होकर एक हाथ से शरीर के लिए अन्न एवं दूसरे हाथ से आत्मा के लिए परमान्न वितरण करते हुए देखती हूँ तब मुझे रामकृष्ण से भी अधिक याद आते हैं स्वामी विवेकानन्द…इन युवकों के भीतर ही वे जीवित एवं सक्रिय हैं।"

भारतीय नर-नारियों के बीच राष्ट्रीय संस्कृति की नींव पर आधारित, चरित्र-गठनमूलक विभिन्न शिक्षाओं का प्रवर्तन करना स्वामीजी ने मिशन की व्यापक कार्यतालिका में सन्निविष्ट किया था। तदनुसार विगत एक सौ वर्षों में रामकृष्ण मिशन की ओर से जनसाधारण की सहानुभूति और सहायता से देश के विभिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न स्तरों के आधुनिक विद्यालय, महाविद्यालय, शिल्प-मन्दिर, संस्कृत विद्यालय, छात्रावास, ग्रन्थागार, संस्कृति-भवन, पुस्तकों एवं पत्रिकाओं के प्रकाशन इत्यादि अनेक प्रकार की संस्थाएँ संगठित हो उठी हैं तथा संन्यासियों की देखरेख में उत्तम रूप से परिचालित हो रही हैं। यहाँ पर यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि स्वामी विवेकानन्द ने नारी-शिक्षा के आदर्श की जो कल्पना अपने मन में पोषित की थी, उसे भारत में सबसे पहले मूर्त रूप देनेवाली एक विदेशी महिला थी—वे थीं स्वामीजी की मानसकन्या 'भगिनी निवेदिता'। उन्होंने नारी-शिक्षा के लिए कलकत्ते में एक बालिका विद्यालय की प्रतिष्ठा की। इसके बाद धीरे-धीरे भारत के विभिन्न स्थानों में भी रामकृष्ण मिशन के तत्वावधान में नारी शिक्षा मूलक विविध संस्थाएं संगठित हो उठी हैं। नारी-जाति के कल्याण के लिए स्वामीजी एक स्त्री-मठ की स्थापना करना चाहते थे। उनकी यह परि-

कल्पना सन् १९५४ ई० में साकार हुई। श्री माँ सारदा देवी की जन्म-शताब्दी के अवसर पर "श्री सारदा मठ" के नाम से एक स्वतन्त्र नारी-संघ की प्रतिष्ठा हुई।

यह देखा गया है कि जब भी कोई भी धार्मिक आन्दोलन राजनीति के साथ जड़ित होता है तो वह पथ-भ्रष्ट एवं आदर्श-च्युत हो जाता है। इसलिए रामकृष्ण मिशन की कार्य प्रणाली निर्धारित करते समय स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा, "मिशन का लक्ष्य एवं आदर्श चूँकि आध्यात्मिक तथा सेवापरक है, अतः राजनीति के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।" स्वामीजी के निर्देशानुसार रामकृष्ण मिशन ने कभी भी राजनीति के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखा।

पाठकों की जानकारी के लिए एक बात यहाँ पर बताना आवश्यक है कि रामकृष्ण मिशन की तरह स्वामीजी ने 'रामकृष्ण मठ' की भी प्रतिष्ठा की थी। वास्तव में 'रामकृष्ण मठ' एवं 'रामकृष्ण मिशन' रामकृष्ण-संघ के ही दो पार्श्व हैं। इन दोनों में कानूनन भेद रहने पर भी आदर्श की दृष्टि से मूलतः ऐक्य है। रामकृष्ण मठ का प्रधान कार्य है संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियों का जीवन-गठन करना तथा धर्म प्रचार करना, जबकि रामकृष्ण मिशन का कार्य है समाज सेवा करना। मिशन की कार्यकारिणी समिति मठ के न्यासियों द्वारा ही बनी है; उसके कार्यकर्त्ता मुख्यतः रामकृष्ण मठ के ही संन्यासी और ब्रह्मचारीगण हैं, तथा दोनों का प्रधान केन्द्र बेलुड़ मठ है। बेलुड़ मठ की भी स्थापना स्वामीजी ने ही की थी।

सन् १९२२ ई० में स्वामी ब्रह्मानन्द के देह-त्याग के पश्चात् क्रमशः स्वामी शिवानन्द, स्वामी अखण्डानन्द, स्वामी विज्ञानानन्द, स्वामी शुद्धानन्द, स्वामी विरजानन्द, स्वामी शंकरानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द, स्वामी माधवानन्द, स्वामी वीरेश्वरानन्द तथा स्वामी गम्भीरानन्द रामकृष्ण-संघ के अध्यक्ष पद पर आरुढ़ हुए और उन्होंने देश-विदेश के अनेक स्थानों में मठ एवं मिशन के केन्द्र स्थापित कर, वेदान्त-धर्म के बहुल प्रचार एवं विविध पारोपकारिक कार्यों के अनुष्ठान द्वारा संघ का बहुत ही विस्तार किया। वर्तमान संघाध्यक्ष स्वामी भूतेशानन्द पूर्व-नायकों का पदानुसरण करते हुए दक्षतापूर्वक सन् १९८९ से रामकृष्ण संघ का परिचालन कर रहे हैं। आज भारत तथा भारतेतर देशों में रामकृष्ण-संघ के सब मिलाकर १३४ केन्द्र हैं। उनमें से १०१ केन्द्र भारत में हैं और ३३ केन्द्र विदेशों में। इन सब मठ और मिशन-केन्द्रों के माध्यम से एक ओर जिस प्रकार मानव-समाज की उन्नति के लिए तरह-तरह के कार्य अनुष्ठित हो रहे हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर संघ के संन्यासीगण पूर्व और पश्चिम के बीच एक संयोग-सेतु स्थापित कर, भारतीय संस्कृति के आदर्श का प्रचार कर रहे हैं और इस प्रकार मानव के विचार जगत में भी एक विपुल परिवर्तन लाकर विश्व-शान्ति का पथ सुगम बना दे रहे हैं। अमेरिका के दक्षिण कॅलिफोर्निया विश्वविद्यालय के विद्वान अध्यापक फ्लॉइड एच० रॉस ने अपने भारत-भ्रमण के दौरान उपर्युक्त बातों को ही प्रतिध्वनित करते हुए 'अमृत बाजार' पत्रिका में लिखा था—"वर्तमान भारत में शिक्षा और धर्म विषयक जिन सब संघों का उद्भव हुआ है। उनमें रामकृष्ण-संघ ही सबसे अधिक उल्लेख-योग्य है। रामकृष्ण और विवेकानन्द के आदर्शों से अनुप्राणित संन्यासियों के नेतृत्व में परिचालित ये केन्द्र यह प्रमाणित कर रहे हैं कि जो चिरन्तन सत्य हैं, वे तभी कार्यशील और कल्याणकर होते हैं, जब वे मानव-जीवन में सदा-सर्वदा आचरित होते हैं और इस प्रकार कालोपयोगी बनाकर मानव-समाज के समक्ष रखे जाते हैं। ···पाश्चात्य

भूमि में अवस्थित रामकृष्ण-संघ के ये केन्द्र मानव जाति के बीच आपसी सद्भाव और शान्ति के स्थापन का मार्ग सुगम बनाकर एक महान् दायित्व निभा रहे हैं।"

यहाँ पर रामकृष्ण मिशन के द्वारा १९९५-९६ के दौरान किये गये विविध सेवा-कार्यों का एक संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं जिससे पाठक इन कार्यों के परिमाण एवं विस्तार के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत अंदाज लगा सकेंगे।

चिकित्सा कार्य---

९ अस्पतालों एवं ९२ चिकित्सा केन्द्रों के द्वारा करीब ५० लाख रोगियों की चिकित्सा-सेवा की गयी। इस कार्य में करीब १३ करोड़ रुपये व्यय हुए। इसके अतिरिक्त १० नेत्र-ऑपरेशन-शिविरों का भी आयोजन किया गया जिसमें ७५५ गरीब लोगों का मोतिया बिन्द आपरेशन किया गया।

शैक्षणिक कार्य—

मिशन के बहुविध शिक्षा-संस्थानों ने उत्कृष्ट परिणाम हासिल किये। पश्चिम बंगाल में माध्यमिक परीक्षा में मिशन के ५४० छात्रों ने स्टार (७५% एवं इससे भी अधिक अंक) प्राप्त किया। विद्यार्थियों की कुल संख्या करीब १ लाख ६० हजार थी, जिसमें ५७ हजार से भी अधिक छात्राएँ थीं। इसके तहत ३९ करोड़ रुपये खर्च हुए।

ग्रामीण एवं जनजाति कार्य—

५ करोड़ ५७ हजार रुपये की लागत पर मिशन ने ग्रामीण एवं आदिवासी विकासों का भी बीड़ा उठाया। इस परियोजना में कम लागत पर ग्रह-निर्माण एवं विभिन्न प्रशिक्षण-कार्य शामिल हैं।

राहत एवं पुनर्वासन कार्य—

मिशन ने छः राज्यों में वृहत् पैमाने पर राहत एवं पुनर्वासन के कार्य किये, जिनमें करीब १ करोड़ २१ हजार रुपये व्यय हुए। महाराष्ट्र के लातूर जिले में भूकम्प-पीड़ितों के लिए ६४६ भूकम्प-निरोधक मकान, ३ समाज-मन्दिर, ३ विद्यालय-भवन एवं छः शिशु-उद्यानों का निर्माण-कार्य पूरा किया गया।

समाज-कल्याण कार्य—

समाज-कल्याण-कार्यों जैसे निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति, वृद्ध एवं असहाय लोगों को आर्थिक सहायता इत्यादि में ८४ लाख रुपये खर्च किये गये।

इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी मिशन ने उल्लेखनीय कार्य किये हैं जैसे धर्मग्रन्थों का प्रकाशन, धार्मिक उत्सवों एवं सभाओं का आयोजन, युवा-सम्मेलनों एवं सांस्कृतिक-अनुष्ठानों का परिचालन इत्यादि। आज रामकृष्ण मिशन के सेवा-कार्य देश-विदेश में आदर्श-नमूने के रूप में ग्रहण किया जा रहा है। मिशन के कार्यों से सभी अनुप्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं। मिशन से प्रेरणा प्राप्त कर अगणित स्वेच्छा-शील समाज-सेवी संस्थाओं की प्रतिष्ठा हुई है। मिशन की कर्मधारा ने प्राचीन भारतीय साधु-समाज की भी चिन्तन-प्रक्रिया एवं जीवन-क्रम में अभूतपूर्व परिवर्तन लाया है। संन्यासियों का गैरिक वस्त्र, उनका संगठन एवं प्रचार-पद्धति सब कुछ में विवेकानन्द का प्रभाव है। साधुओं के बीच सम्प्रदाय विरोध बहुत अंशों में दूर हुआ है एवं वे जन-सेवा के कार्य में अग्रसर हो रहे हैं। श्री पवित्र कुमार घोष ने 'वर्तमान' पत्रिका में ठीक ही लिखा है—"रामकृष्ण मिशन प्रतिष्ठित होने के पहले पूरे देश की छवि अलग ही थी। मठ थे, मन्दिर थे। दशनामी संन्यासी-सम्प्रदाय थे, लेकिन जन-सेवा कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती थी। साम्प्रदायिक-सीमाओं को लाँघकर सेवा में प्रवृत्त होने की बात पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।"

विगत एक सौ वर्ष के दौरान पृथ्वी के इतिहास में अनेकानेक परिवर्तन हुए हैं, जैसे अंग्रेज-साम्राज्य का पतन, भारतवर्ष की खण्डित स्वाधीनता, रूस का उत्थान एवं पतन, दक्षिण-पूर्व एशिया का जनजागरण इत्यादि। लेकिन इन परिवर्तनों के बीच भी धीर एवं स्थिर भाव से रामकृष्ण मिशन ने अपनी विश्वव्यापी अग्रगति को, अपने भावादर्श को अक्षुण्ण बना रखा है। पृथ्वी के सभी स्तर के लोगों, जैसे साहित्यकार, कलाकार, वैज्ञानिक, इतिहासज्ञ, राजनीतिज्ञ, समाजशास्त्री तथा धार्मिक पुरुषों से लेकर साधारण मनुष्य के अन्तरतम प्रदेश में प्रवेश कर रामकृष्ण-विवेकानन्द भावादर्शने उनके अन्दर आमूल परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। इसीलिए 'हिस्ट्री ऑफ रामकृष्ण मठ एण्ड मिशन' नामक अपनी पुस्तक की समाप्ति करते हुए स्वामी गम्भीरानन्दजी ने लिखा है— "पाठक हमें क्षमा करेंगे यदि हम इस इतिहास का उपसंहार इस महान आशा के साथ करें कि यह भावान्दोलन एक विश्व शक्ति बनने के सही पथ पर अग्रसर है। रामकृष्ण-विवेकानन्द का संदेश मानवीय क्रिया-कलापों के गहनतम स्रोत को स्पर्श करता है और यह सर्वांगीण नवजागरण के लिए परिकल्पित है।"

रामकृष्ण मिशन की चिकित्सा सेवाएँ

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मठ, हैदराबाद

सेवाश्रम आन्दोलन का उद्भव :

लगभग सौ वर्ष पूर्व की कथा है यह। छोटी सी किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण। १३ जून, १९०० ईसवी। प्रातःकाल का समय था। भगवान् भास्कर ने अभी तक उदित होकर अपना प्रकाश पृथ्वी पर प्रसारित नहीं किया था। युवक यामिनीरंजन काशी की संकरी अंधेरी गलियों से गुजरता हुआ गंगा के घाट की ओर स्नान हेतु जा रहा था। अचानक उसे एक हल्की सी करुण कराह सुनाई दी। यों तो और भी कई लोग उस ओर से गुजर चुके थे, किन्तु किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया था। लेकिन यामिनीरंजन ने रुककर उस ओर देखा, जिधर से कराहने की आवाज आ रही थी। उसने देखा, एक कृशकाय, रोगग्रस्त, क्षुधार्त वृद्धा गली के एक किनारे पड़ी हुई थी। यामिनीरंजन को अपने निकट आते देख वह धीरे से बोली, "मैंने चार दिन से कुछ नहीं खाया है बेटा, मुझे कुछ खाने को दे।" यामिनीरंजन ने सावधानी से उस वृद्धा को उठाया और पास के बरामदे में सुला दिया। फिर वह दौड़ता हुआ घाट पर पहुँचा और मिलने वाले पहले सज्जन के सामने हाथ पसार दिया। उसे एक चवन्नी मिली। यामिनीरंजन ने उससे कुछ भोज्य पदार्थ खरीदा और उस वृद्धा को खिलाकर उसकी जान बचायी। दरिद्र, पीड़ित और रोगग्रस्त जीवों को शिवज्ञान से की गयी सेवा का वह छोटा सा अंकुर आगे चलकर एक महान् वटवृक्ष के रूप में परिणत हुआ, एक बृहत् चिकित्सालय का रूप लिये, जिसने असंख्य रोगी-नारायणों की सेवा की और कर रहा है। पुण्य क्षेत्र मुक्तिधाम काशी में सैकड़ों लोग अपनी वृद्धावस्था में काशी में मरकर मुक्त होने की आशा से काशीवास के लिए आते हैं लेकिन मानव की क्रूरता और नियति की निष्ठुरता से उनकी कुछ ऐसी दयनीय स्थिति हो जाती है जैसी इस वृद्धा की हुई थी।

वृद्धा की आपात सेवा करके यामिनीरंजन, हरिदास, चारूचन्द्र और केदारनाथ आदि अपने मित्रों के पास पहुँचा। इस घटना के पूर्व ही इन

मित्रों ने मिलकर एक स्वाध्याय-मण्डल का गठन किया था जिसमें वे स्वामी विवेकानन्द के साहित्य का अध्ययन करते तथा श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों के अनुसार साधना कर ईश्वर-साक्षात्कार करने का प्रयत्न करते थे। उपर्युक्त घटना के सुनने पर युवकों ने चन्दा एकत्र किया और वृद्धा को अस्पताल में भर्ती करवाया। यही नहीं, उन्होंने Home of Relief या "राहत गृह नामक" एक संस्था का गठन किया, जिसका उद्देश्य रखा—आर्त, पीड़ित, असहाय रोगियों और दरिद्रों की शिवज्ञान से सेवा। ये युवक सड़क के किनारे, गलियों, घाटों पर पड़े असहाय लोगों को खोजते तथा उनकी आवश्यकतानुसार सेवा करते। कुछ को वे अस्पताल ले जाते, कुछ को वस्त्र अथवा भोजन प्रदान करते। आवश्यकता पड़ने पर किसी रोगी को आश्रय प्रदान कर सेवा करते। केदारनाथ (जो आगे जाकर स्वामी अचलानन्द हुए) के मकान में टाइफाईड के एक रोगी को रख कर सर्वप्रथम ऐसी सेवा की गई थी और यही सेवाश्रम (Home of Service) का प्रथम अन्तेवासी (Indoor) रोगी था। शीघ्र ही ऐसे अन्तेवासी रोगियों के लिए एक अधिक बड़े मकान की आवश्यकता हुई और ५ रुपये प्रतिमाह की दर पर एक मकान किराये पर लिया गया। एक होमियोपैथिक डिस्पेंसरी भी प्रारंभ की गयी। एक कमरे में रोगी रखे जाते तथा दूसरे में होमिहोपैथिक डिस्पेंसरी व कार्यालय था और उसी में चारूचन्द्र (जो आगे चलकर स्वामी शुभानन्द हुए) और यामिनीरंजन रहा करते थे।

शीघ्र ही इन युवकों के उत्साह, त्यागपूर्ण सेवा और अक्लान्त परिश्रम के प्रति लोग आकृष्ट हुए तथा नगर के सम्माननीय व्यक्तियों की सहानुभूति उनके प्रति होने लगी। जिनके सुझावानुसार ५ सितम्बर, सन् १९०० ई० को एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया तथा संस्था का नाम बदलकर "Poor Men's Relief Association" अर्थात् "दरिद्रजन-त्राण-संस्था" रखा गया। छह महीने के भीतर ही बहिर्विभागीय और अंतर्विभागीय सेवा कार्य इतना बढ़ गया कि और अधिक स्थान वाले भवन की आवश्यकता महसूस होने लगी। तदनुसार दशाश्वमेध रोड पर एक भवन किराये पर लिया गया और बाद में उसे रामपुर के अधिक बड़े भवन में स्थानांतरित कर दिया गया। आठ महीनों के भीतर ३३० पुरूष और ३३४ महिलाओं की किसी न किसी प्रकार से सेवा प्रदान की गयी।

फरवरी १९०२ में स्वामी विवेकानन्द का द्वितीय और अंतिम बार वाराणसी में शुभागमन हुआ। स्वामी जी संस्था के कार्य से अत्यन्त प्रसन्न हुए। लेकिन उन्होंने कहा कि संस्था का नाम बदलकर "सेवाश्रम" या Home of Service किया जाये। उन्होंने कहा, "त्राण करने वाले तुम कौन होते हो? तुम केवल सेवा कर सकते हो। त्राण करने का अहंकार सर्वनाश कर डालता है। ......किसी अन्य मानव को अपने से क्षुद्र और हीन समझना अहंकार का द्योतक है। तुम्हारा आदर्श "दया" नहीं, शिवज्ञान से जीव सेवा होना चाहिए।" चारूचन्द्र को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "गरीबों के लिए एकत्रित किये गये प्रत्येक पैसे को अपने रक्त के समान (मूल्यवान) समझो। ऐसा महान कार्य स्थायी रूप से तथा सुचारू रूप से केवल वे ही कर सकते हैं जो सर्वत्यागी हों।" स्वामीजी ने सेवाश्रम की ओर से जनसाधारण के लिए एक "प्रतिवेदन" (अपील) लिखा, जिसे १९०२ में सेवाश्रम की पहली वार्षिक रिपोर्ट में छापा गया। स्वामीजी की यह अपील तब से अब तक की प्रत्येक वार्षिक रिपोर्ट में छापी जाती है। स्वामीजी ने अपने गुरुभाई तथा रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द को

निर्देश दिया कि वे सेवाश्रम पर अपनी कृपादृष्टि बनाये रखें। स्वामी ब्रह्मानन्द जी की स्वीकृति से तथा सेवाश्रम की कार्यकारिणी समिति के एक प्रस्ताव के माध्यम से २३ सितम्बर, १९०३ ई० को यह संस्था रामकृष्ण मिशन का अभिन्न अंग बन गई तथा "रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम" कहलाने लगी। तथा आज भी वह इसी नाम से जानी जाती है।

इसके बाद सेवाश्रम की प्रगति तेजी से हुई। दो दान दाताओं से अप्रत्याशित रूप से धन मिला। उतने ही अप्रत्याशित रूप से मात्र ६०००/- रुपयों में एक भूमिखण्ड का प्रस्ताव मिला जिसे पाकर संस्था वे लिये स्थायी स्थान मिला। इस भूमिखण्ड पर स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने १६ अप्रैल, १९०८ को भवन का शिलान्यास किया और उसका उद्‌घाटन भी स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने ही १६ मई, १९१० को किया। माँ श्रीसारदा देवी ने ८ नवंबर, १९१२ को सेवाश्रम में शुभागमन किया। उन्हें पालकी में बैठाकर सभी स्थानों, वार्डों आदि को दिखाया गया। मां सारदा सेवाश्रम का वातावरण और कार्य देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई और बोलीं, "यहाँ श्रीरामकृष्ण स्वयं विराजित हैं और देवी लक्ष्मी ने इस स्थान को अपने निवास के रूप में चुना है।" माँ सारदा ने दस रुपए का एक नोट दान किया, जो आज भी सेवाश्रम में बड़े समादर के साथ बहुमूल्य और परमपावन निधि और माँ सारदा के आशीर्वाद के रूप में सुरक्षित रखा हुआ है।

इस बीच कनखल (हरिद्वार) में भी कुछ इसी प्रकार की घटनाएँ घट रही थीं। स्वामी विवेकानंद ने परिव्राजक के रूप में हरिद्वार-ऋषिकेश आदि स्थानों में भ्रमण करते समय इन स्थानों में निवास करने वाले साधुओं की दुर्दशा का स्वयं अनुभव किया था। वे स्वयं रोगग्रस्त हो गये थे तथा चिकित्सा के अभाव में मरणासन्न हो गये थे। अतः उन्होंने अपने शिष्य स्वामी कल्याणानंद को कहा, "पुत्र, क्या तुम हरिद्वार और ऋषिकेश के रोगग्रस्त साधु-संन्यासियों के लिए कुछ कर सकते हो? बीमार होने पर उन्हें देखने वाला कोई नहीं होता, जाओ और उनकी सेवा करो।" स्वामी कल्याणानंदजी ने अपने गुरु के इस आदेश को शिरोधार्य कर जून, १९०१ में हरद्वार के निकट कनखल नामक गाँव में अपना कार्य आरम्भ किया। तीन रुपये मासिक पर दो कमरे किराये पर लिये गये, जिनमें अंतर्विभागीय-वार्ड, डिस्पेंसरी, कार्यालय, स्वामी का निवास स्थान आदि सब कुछ था। एक बक्स में दवाइयाँ रखी जातीं। स्वामी भिक्षा द्वारा अपना भरण-पोषण करते तथा जो उनके पास आते तथा जो साधु आ नहीं सकते या आना पसंद नहीं करते उनकी कुटिया में जाकर उन्हें दवाइयाँ देते थे। कुछ ही दिनों में स्वामी विवेकानन्द के एक अन्य शिष्य स्वामी निश्चयानंद भी उनसे आ मिले। शारीरिक कष्ट और परिश्रम की उपेक्षा कर दोनों गुरुभाइयों ने ऋषिकेश में भी एक डिस्पेंसरी प्रारम्भ की जो एक प्रकार से कनखल से १५ मील दूर एक शाखा केन्द्र था। वे लोग प्रतिदिन १५ मील पैदल जाते-आते। साधुओं की चिकित्सा के अतिरिक्त वे उन साधुओं की मृत-देहों का अंतिम संस्कार भी करते, जिनकी मृत्यु उनकी कुटिया में ही हो जाती थी तथा जिनकी अंतिम क्रिया करने वाला कोई नहीं होता। वे केवल साधुओं की ही चिकित्सा सेवा नहीं करते बल्कि अछूतों और निम्नजातियों के लोगों की भी सेवा करते। इसके फलस्वरूप एक ओर तो हरिद्वार और ऋषिकेश के रूढ़िवादी साधु समाज में उनकी निन्दा होने लगी और "भंगी-साधु" कहकर अधिकांश साधु उनकी उपेक्षा करने लगे तो दूसरी ओर कुछ साधु, विशेषकर महामंडलेश्वर स्वामी धनराज गिरि, उनका सम्मान और आदर करने लगे। एक बार

किसी मठ के साधु-भण्डारे में इन अछूत साधुओं—स्वामी निश्यानन्दजी और स्वामी कल्याणानन्दजी को आमंत्रित नहीं किया गया था जब महामंडलेश्वर स्वामी धनराज गिरी को, जो विशेष अतिथि थे, यह पता चला तो उन्होंने उन सभी पुरातन पंथी साधुओं को डाँटा और कहा कि वस्तुतः "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" के वेदान्तोक्त सिद्धांत का ठीक-ठीक पालन तो ये दो संन्यासी ही कर रहे हैं। यदि उन्हें निमंत्रित नहीं किया गया तो वे भी निमंत्रण स्वीकार नहीं करेंगे और भण्डारे में सम्मिलित नहीं होंगे। इस घटना से संन्यासी-समाज की आँखें खुलीं और मिशन के इन स्वामियों के प्रति उनका विरोध समाप्त हो गया।

सन् १९०३ ईस्वी में एक भूमिखण्ड का क्रय किया गया और दो ब्लॉक के एक छोटे से भवन का निर्माण हुआ और सन् १९०५ ईस्वी में सेवाश्रम इस अपने ही भवन में स्थानांतरित हुआ। सन् १९११ ईस्वी में बीस शय्याओं का एक और वार्ड बना तथा सन् १९१३ ईस्वी में "क्षयरोग-विभाग" का उद्घाटन हुआ। सन् १९२२ ईस्वी तक शैय्याओं की संख्या ६६ हो गयी थी।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन सेवाश्रमों में सभी सेवाएँ निःशुल्क थीं तथा सेवाश्रम का कार्य दान द्वारा प्राप्त धन से ही चलता था। साधु अपना निर्वाह मधुकरी भिक्षा द्वारा किया करते थे। दो अन्य व्यक्ति स्वामी जपानन्द और ब्रह्मचारी सुरेन भी भिक्षा करने जाते और सेवा-कार्य में अपना योगदान करते। लेकिन सेवाश्रम का संचालन और मधुकरी भिक्षा दोनों एक साथ करने में व्यावहारिक समस्याएं उपस्थित होने लगीं। यह बात रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सारदानन्दजी के कानों तक पहुँची तो उन्होंने इस पर विचार करने के बाद कार्य को सुचारू रूप से तथा दक्षतापूर्वक चलाने के लिए भिक्षा बंद कर देने का निर्देश दिया। इस प्रकार १९२१ ईस्वी से भिक्षा की परंपरा समाप्त हो गयी। लेकिन स्वामी कल्याणानन्दजी एवं स्वामी निश्चयानन्द जी भिक्षा के अद्भुत आत्मनिर्भरता के भाव से वंचित होने से अप्रसन्न ही हुए थे।

अगला सेवाश्रम वृन्दावन में प्रारंभ हुआ, जहाँ हजारों तीर्थयात्रियों की चिकित्सा की कोई व्यवस्था नहीं थीं। सन् १९०७ ईस्वी में वाराणसी सेवाश्रम के कार्य से प्रेरित हो यज्ञेश्वरचन्द्र और उनके पुत्र के नेतृत्व में वृन्दावन के स्थानीय लोगों ने एक सेवाश्रम का शुभारंभ किया तथा बेलुड़ मठ से ब्रह्मचारी हरेन्द्र ने आकर उनका साथ दिया। सर्वप्रथम सेवाश्रम श्रीरामकृष्ण के गृहस्थ भक्त बलराम बोस के पैतृक भवन 'काला बाबू कुंज' में प्रतिष्ठित हुआ तथा इसी स्थान पर रोगियों को रखा जाता था। सन् १९०८ ईस्वी में व्यवस्था रामकृष्ण मिशन के हाथों में स्थानांतरित हो गई। सन् १९१५ ईस्वी में ८.३२ एकड़ भूमि क्रय की गई जिस पर पहले एक अस्थायी भवन का निर्माण किया गया और सेवाश्रम 'काला बाबू कुंज' से इस स्थान पर स्थानांतरित हो गया। बाद में एक पुरुष एवं एक महिला वार्ड का निर्माण हुआ।

अगला सेवाश्रम सन् १९०८ ई० में इलाहाबाद में खुला। उसके बाद अन्य सेवाश्रमों का उद्भव हुआ, यथा लखनऊ (१९१४) कान्टाई (१९१३), बाँकुड़ा (१९१७), सोनारगाँव ढाका (१९१५), गड़बेता, मिदनापुर इत्यादि। ये सेवाश्रम रामकृष्ण मिशन की चिकित्सा सेवाओं के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हैं। परवर्तीकाल में डिस्पेन्सरी, चिकित्सालय, पोलीक्लीनिक, मेडिकल इन्स्टीट्यूट आदि जो भी रूप इस चिकित्सा-सेवाओं का रहा हो, वह सब इस सेवाश्रम आंदोलन की ही मानो शाखा-प्रशाखाएं थीं। सेवाश्रम की अवधारणा और कार्यपद्धति अत्यंत सरल होती है: साधु-संन्यासी स्वयं रोगी को दवा देते हैं या उसकी

परिचर्या करते हैं। हिन्दू संन्यास परम्परा में पहली बार यह घटना घटी है जिसमें साधु भगवान् को केवल अपने हृदय या देवालय में ही दर्शन नहीं करता अपितु वह पीड़ित और दुःखी नारायण की सेवा-सुश्रुषा द्वारा आराधना करता है। इस कार्य से मानो इन संन्यासियों ने उन्मुक्त घोषणा की, "दरिद्र, दुःखी, अनाथ, असहाय, रोगी हमारे आराध्य देव हैं।" रास्ते के किनारे उपेक्षित पड़े व्यक्ति उनके प्रमुख उपास्य देवता थे। स्वामी शुभानन्द और स्वामी अचलानन्द तथा स्वामी कल्याणानन्द और स्वामी निश्चयानंद के दृष्टांत से प्रेरित होकर अनेक युवा कार्यकर्त्ता चाहे वे साधु हों या गृहस्थ, डाक्टर हों या अप्रशिक्षित, अपनी निःस्वार्थ, निःशुल्क सेवाएँ प्रदान करने लगे।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि सेवाश्रम का कार्य सदा निर्विघ्न और सरलतापूर्वक चलता रहा। सत्य तो यह है कि प्रारम्भिक दशकों में सर्वदा आर्थिक कठिनाई बनी रहती थी। प्रथम विश्वयुद्ध का काल सन् १९१४ से १९१८ तक विशेष कठिनाई का काल था। और फिर ऐसे भी लोग थे जो सहायता करने में हिचकते थे। इस सन्दर्भ में कनखल सेवाश्रम की एक घटना स्मरणीय है। एक व्यक्ति ने अपने पिता की स्मृति में एक वार्ड बनाने के लिए धन दिया। लेकिन दान देने के कई दिनों बाद उसके मन में अपने कार्य के औचित्य के प्रति तथा मिशन के कार्य के स्थायित्व और श्रेष्ठत्व के प्रति शंका होने लगी। अतः वह इस प्रकार की शर्तें रखने लगा जिन्हें मानना सेवाश्रम के लिए सम्भव न था। बाध्य होकर सेवाश्रम को दूसरों से ऋण लेकर उसके धन को लौटाना पड़ा। पर यह भी सत्य है कि संन्यासी सदा मानवीय सहायता पर निर्भर नहीं रहते। उनका एकमात्र आश्रय भगवान ही होता है। उन्हें परमात्मा में पूर्ण विश्वास था और आर्थिक कठिनाई के अवसरों पर वे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से आत्मनिरीक्षण करके यह जानने का प्रयत्न करते कि उनकी सेवा में कहीं कोई त्रुटि तो नहीं है अथवा वे अपने आदर्श से च्युत तो नहीं हो रहे हैं। और ऐसा प्रायः होता था कि त्रुटि मार्जन के साथ ही साथ उन्हें सहायता प्राप्त होने लगती थी तथा आर्थिक कठिनाई दूर हो जाती थी।

सेवाश्रम के सेवारत कार्यकर्ताओं के मनोभाव का एक सुन्दर दिग्दर्शन हम 'श्रीम' को कहे गये स्वामी निश्चयानन्द जी के शब्दों में पाते हैं। स्वामी निश्चयानन्द जी को रात-दिन काम में लगे देखकर एक दिन 'श्रीम' ने उनसे कहा, "सुनो, निश्चय, श्री रामकृष्ण कहा करते थे कि साधु जीवन का आदर्श भगवदर्शन है, केवल कर्म नहीं।" निश्चयानन्दजी ने विनम्रतावश कोई उत्तर नहीं दिया। लेकिन "श्रीम" ने जब यही बात दो-तीन बार कही तो निश्चयानन्द अपने को नहीं रोक सके और रो पड़े तथा हाथ जोड़कर बोले, "मैं स्वामी (विवेकानन्द) का क्रीतदास हूँ। मैं कर्म के अतिरिक्त कोई साधना नहीं जानता। और स्वामीजी ने मुझे यही करने का आदेश दिया था। और मैंने इसी व्रत के पालन की प्रतिज्ञा की है।" यह सुनकर 'श्रीम' सिर्फ शान्त ही नहीं हुए बल्कि उनका भाव समझ कर उनसे क्षमा याचना भी की। एक दूसरे संन्यासी वाराणसी सेवाश्रम के खेत में आलू गोभी आदि की खेती का कार्य करते थे। एक दिन किसी ने उनसे पूछा, कि आप संन्यासी होकर भी एकांत में गीता, भागवत् का पाठ या ध्यान-जप न करके ऐसी कड़ी धूप में यह सब खेती का काम क्यों कर रहे हैं। उन स्वामी ने निर्द्वन्द्व-भाव से तत्काल उत्तर दिया, "क्या? मैं यहाँ आलू, गोभी उगा रहा हूँ जो रोगी नारायण खायेगें।" एक अन्य संन्यासी ने अपना सारा जीवन रोगी नारायण के घावों की मरहम पट्टी करते बिता दिया। उन्हें यह कार्य खड़े-खड़े करना

पड़ता था। पचास से अधिक वर्षों तक प्रतिदिन ६ घंटे खड़े रहकर मरहम-पट्टी करने से उनके घुटने अकड़ गये थे और वृद्धावस्था में वे अपने घुटनों को मोड़ने में असमर्थ हो गये थे। इन संन्यासियों के लिए कर्म और उपासना में कोई अन्तर नहीं रह गया था तथा "आत्मनोमोक्षार्थं जगाद्धिताय च" का आदर्श जीवन्त हो उठा था।

पूर्व के इन सेवाश्रमों का एक बहुत बड़ा सौभाग्य था कि उन्हें रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्दजी तथा श्रीरामकृष्ण के अन्य महान् संन्यासी शिष्यों के आशीर्वाद तथा मार्ग-दर्शन प्राप्त होते रहते थे। स्वामी तुरीयानन्द पहले कुछ काल तक कनखल में रहे और उसके बाद अपने जीवन के अन्तिम कुछ वर्ष उन्होंने काशी सेवाश्रम में बिताये। इन महापुरुषों की उपस्थिति मात्र से सेवाकर्मियों का मन उच्च आध्यात्मिक-स्तर पर आरूढ़ हो जाता था। श्री रामकृष्ण के अन्त रंग शिष्य बृन्द तथा सेवाश्रम के पुरोधा स्वामी वृन्द सदा कार्यकर्ताओं को यह निर्देश दिया करते थे कि वे अपना आध्यात्मिक भाव बनाये रखें तथा यह सोचें कि वे नारायण की ही पूजा कर रहे हैं अन्यथा यह कर्म भी एक सामान्य लौकिक कर्म में परिणत हो जाएगा। स्वामी अचलानन्द कभी भी रोगी शब्द का प्रयोग नहीं करते थे। इसके बदले वे सदा "नारायण" कहते थे तथा चाहते थे कि दूसरे लोग भी ऐसा ही करें।

परवर्ती घटनाएँ :

सेवाश्रमों के प्रारम्भ और विकास के क्रम के बाद रामकृष्ण मिशन की चिकित्सा सेवाओं का दूसरा चक्र प्रारम्भ हुआ। इसके अन्तर्गत अस्पताल में आउटडोर डिस्पेन्सरी आदि प्रारम्भ की गयी। जिनके माध्यम से समाज की कुछ विशिष्ट चिकित्सकीय आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। कलकत्ते में एक बाल कल्याण एवं प्रसूति सेवाओं के लिए "शिशु मंगल" नामक प्रसूति गृह का प्रारम्भ किया गया। दिल्ली में दातव्य चिकित्सालय, क्षयनिदान और चिकित्सा केन्द्र का प्रारम्भ हुआ तथा राँची में एक क्षय सेनेटोरियम की स्थापना हुई। इसी क्रम में पुरातन सेवाश्रमों को भी समयानुकूल स्तर पर उन्नीत किया गया।

स्वामी दयानन्दजी जब अमेरिका में थे तब वहाँ चिकित्सा-विज्ञान की प्रगति से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। भारत लौटकर उन्होंने कुछ विरोध के बावजूद कलकत्ता में 'शिशु-मंगल' नामक एक सात शैय्याओं के केन्द्र का प्रारम्भ किया. जिसका उद्देश्य था गर्भवती माताओं की प्रसवपूर्व और प्रसव पश्चात् सुरक्षा तथा नवजात शिशु की सुरक्षा। अपनी दक्षता एवं उच्चकोटि की समर्पित सेवा के लिए यह संस्था शीघ्र ही विख्यात हो गयी। सन् १९३९ ई० तक इसके ५० शैय्याएँ तथा अपना निजस्व भवन हो गया था। सन् १९५६ में इसे एक सामान्य चिकित्सालय में परिवर्तित किया गया और १९५७ में इसका नाम बदल कर 'सेवा-प्रतिष्ठान रखा गया। अब यह ५५० शैय्याओं वाला एक विशाल चिकित्सालय है, जिसमें साधारण चिकित्सालय के अतिरिक्त परिचारिकाओं (नर्सों का प्रशिक्षण केन्द्र, स्नात-कोत्तर चिकित्सा महाविद्यालय और रिसर्च केन्द्र तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएं भी हैं।

भारत में बड़ी संख्या में लोग क्षयरोग के शिकार होते हैं। इस हेतु रामकृष्ण मिशन तो एक क्षय-चिकित्सालय या सेनेटोरियम प्रारम्भ किया। राँची से दस मील दूर 'हैंगरी' नामक स्थान पर २४० एकड़ जमीन १९३९ में प्राप्त हुई। १९५१ में ३२ शय्याओं से प्रारम्भ किये इस सेनेटो-रियम में अब २८० शैय्याएँ हैं। दिल्ली में १९४८ से एक क्षय रोग चिकित्सा-केन्द्र हैं, जहाँ एक उच्चकोटि की निदान प्रयोगशाला है तथा रोगियों

के घर पर दवाईयाँ पहुँचाने की भी व्यवस्था है। उपर्युक्त दोनों क्षय-चिकित्सालय अपनी दक्षता के कारण समग्र भारत में ख्याति प्राप्त हैं।

जैसा कि संकेत दिया गया है, इस बीच पुराने सेवाश्रमों का भी समयानुकूल विकास होता रहा है, नये भवन बनते रहे तथा आधुनिक निदानोपयोगी यंत्रादि का समावेश किया जाता रहा। अब वाराणसी सेवाश्रम में एक आधुनिक शल्य-चिकित्सा-कक्ष, एक उच्चस्तरीय निदान कक्ष, अल्ट्रासाउण्ड एक्स-रे, एण्डोस्कोपी आदि सहित ३०० शय्याएँ हैं तथा अनेक विशेषज्ञ एवं अति-विशेषज्ञों की सेवाएं भी उपलब्ध हैं। इसी तरह कनखल सेवाश्रम भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजरता रहा है। अब वहाँ १२२ शैय्याएँ हैं। वृन्दावन में सन् १६४३ ई० में एक नेत्र विभाग का आरम्भ किया गया जिसने विशेष ख्याति पायी। इन संस्थाओं को बीच-बीच में सरकारी अनुदान भी प्राप्त होते रहे हैं। साथ ही जनता की ओर से दान भी प्राप्त होता रहा है। अन्यथा इतनी बड़ी संस्थाएँ नहीं चल सकती। सरकार की या दानी लोगों की सहायता प्राप्त हो या न हो, ये संस्थाएं अधिकांश मात्रा में निःशुल्क सेवाएं देने में समर्थ होती रही हैं।

विशुद्ध चिकित्सा-केन्द्रों के अतिरिक्त रामकृष्ण मिशन के कई गैर चिकित्सा-केन्द्र भी दातव्य डिस्पेंसरी आदि चलाते हैं जहाँ एलोपेथी अथवा होमियोपेथी चिकित्सा दी जाती है। ये केन्द्र धीरे-धीरे सुव्यवस्थित एवं संयंत्रों से सुसम्पन्न श्रेष्ठ उपचार केन्द्रों में परिणत हो गये हैं। मद्रास रामकृष्ण मठ से संलग्न डिस्पेंसरी इसका एक दृष्टांत है। कुछ केन्द्रों की अपनी विशिष्टताएँ हैं; यथा कहीं आयुर्वेद अथवा एक्यूपंचर फिजिओथेरेपी, मानसिक-चिकित्सा आदि हैं। आधुनिकतम क्रम में चल चिकित्सा-केन्द्रों का कई स्थानों में प्रारम्भ हुआ है जो ऐसे आदिवासी एवं ग्रामीण अंचलों तक पहुँचते हैं जहाँ तक सामान्यतः कोई भी सुविधा नहीं पहुँच पाती।

रामकृष्ण-मिशन के प्रत्येक चिकित्सा केन्द्र के आद्यन्त इतिहास को प्रस्तुत करना यहाँ सम्भव नहीं है। अतः यहाँ पर केवल प्रमुख, प्रतिनिधि एवं सबसे पहली संस्थाओं का ही वर्णन किया गया है। सेवा विषयक आँकड़ों को भी नहीं दिया जा रहा है।

रामकृष्ण-मिशन के केन्द्रों की एक विशेषता यह रही है कि वे तकनीकी दृष्टि से एवं मानवीय दृष्टि से भी उच्चस्तरीय सेवा प्रदान करने तथा श्रेष्ठतम परिणाम-लाभ करने में अल्पतम आर्थिक व्यय के द्वारा समर्थ हुए हैं। यह कुछ हद तक स्थानीय डॉक्टरों आदि की अवैतनिक सेवाओं के कारण सम्भव होता रहा है। साधु-संन्यासीगण व्यक्तिगत रूप से रोगियों की खोज-खबर लेते हैं, जिससे मितव्ययिता एवं दक्षता में वृद्धि होती है। कई चिकित्सा केन्द्रों में संन्यासी प्रशासी अधिकारी का कार्य ही नहीं करते बल्कि इंजेक्शन लगाना, मरहम-पट्टी करना, परिचर्या करना आदि कार्य स्वयं करते हैं। इनमें से कुछ तो स्वयं डॉक्टर हैं। शिवज्ञान से जीव सेवा के भाव से अनुप्राणित, कार्य पर व्यक्तिगत रूप से नजर रखने वाले, सभी जाति, कुल, धर्म और वर्ण के लोगों के प्रति समान भाव से सहानुभूति सम्पन्न इन संन्यासियों की उपस्थिति के कारण रोगी स्वयं को संस्थाओं में सुरक्षित अनुभव करता है।

उपसंहार :

पिछले कुछ दशकों में चिकित्सा क्षेत्र में विस्मयकारी आमूल परिवर्तन हो गये हैं। नये-नये रोग उभर आये हैं। स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के सम्बन्ध में नयी मान्यताओं, का प्रादुर्भाव हुआ है। इनको संक्षेप में तीन शब्दों में व्यक्त किया जा है : व्यापारीकरण, तकनीकीकरण और विश्वीकरण (Commercialisation, Technicalisation

and Globalization)। खेद है कि चिकित्साशास्त्र अब मानवीय विज्ञान और कला नहीं रह गया है, जो पहले कभी था और जो उसका वास्तविक रूप है और होना चाहिए। इसके बदले चिकित्सा शास्त्र आज धनोपार्जन का धन्धा बन गया है। चिकित्सा शास्त्र के इस पक्ष की स्वयं श्रीरामकृष्ण ने कड़ी निन्दा की थी। तकनीकी प्रगति ने चिकित्सा के कुछ क्षेत्रों में चमत्कार कर डाले हैं लेकिन उससे चिकित्सा अत्यन्त महँगी हो गयी है और केवल धनी एवं अभिजात-वर्ग के बूते की ही चीज हो गयी है। दूसरी ओर मलेरिया, क्षय रोग तथा छूत से फैलने वाले संक्रामक रोग, जिनका सम्बन्ध गरीबी और अस्वच्छता (गन्दगी) से है, भारत जैसे विकासशील देश में बढ़ते चले जा रहे हैं तथा उनकी समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। रामकृष्ण मिशन की चिकित्सा सेवाओं का एक शताब्दी का स्वर्णिम इतिहास है। उसने कठिन परिस्थितियों में यह उपलब्धि की है। आने वाली शताब्दी में मिशन को कुछ भिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना होगा। उसे न्यूनतम व्यय में श्रेष्ठतम चिकित्सा को, तकनीकी प्रगति के लाभ को देश के निर्धनतम व्यक्ति के पास सुदूरतम कोने तक पहुँचाना होगा। साथ ही साथ मानवीयता का उच्चस्तर बनाये रखना होगा तथा स्वार्थरत चिकित्सकों को भी प्रेरित कर निःस्वार्थ सेवा करवाना होगा। मिशन ने ये सारे कार्य किये हैं, करता आया है और आगे आनेवाली अनेक शताब्दियों तक करने का सामर्थ्य रखता है।

आज रामकृष्ण मिशन की चिकित्सा सेवाओं का दायरा व्यापक है; इनमें १४ अस्पताल हैं, ६२ डिस्पेन्सरियाँ, २८ चल चिकित्सालय तथा ५ परिचारिका (नर्सेस) प्रशिक्षण केन्द्र हैं। इसमें साधारण सी होमियोपेथी डिस्पेन्सरी भी है और आधुनिकतम चिकित्सालय भी है। लेकिन रामकृष्ण मिशन उसके चिकित्सा केन्द्रों अथवा उसमें चिकित्सा प्राप्त कर रहे रोगियों की बड़ी संख्या पर गर्व नहीं करता। नहीं, उसे गर्व है उसके किसी केन्द्र विशेष के तकनीकी विशेषत्व पर। उसे गर्व है उस भाव पर, जिस आराधना के भाव से रोगी नारायणों की सेवा की जाती है। एक रोगी की ठीक-ठीक नारायण ज्ञान से सेवा, उस भाव से विहीन रहते हुए हजारों रोगियों की सेवा से कहीं श्रेष्ठतर है। □

रामकृष्ण मठ व मिशन के शाखा केन्द्र

प्रधान केन्द्र — वेलुड़ मठ, हावड़ा (प० बंगाल)

(क) भारतीय शाखा केन्द्र—

अन्दमान (१)—पोर्ट ब्लेयर

आन्ध्र प्रदेश (३)—हैदराबाद, राजमुन्द्री एवं विशाखापट्टनम

अरुणाचल प्रदेश (३)—अलोंग, इटानगर एवं नरोत्तमनगर

आसाम (३)—गोहाटी, करीमगंज एवं सिलचर

विहार (७)—देवघर, जमशेदपुर, जामताड़ा, कटिहार, पटना एवं राँची (२)

दिल्ली (१)—नई दिल्ली

गुजरात (२)—लिम्बड़ी एवं राजकोट

हरियाणा एवं पंजाब (१)—चण्डीगढ़

कर्णाटक (४)—बंगलोर, मंगलोर, मैसूर एवं पन्नमपेट

केरल (७)—कलाडी, कालीकट, पलाई, क्वीलेंडी, तिरुअनन्तपुरम्, त्रिचुर एवं तिरुवेल्ला
मध्य प्रदेश (२)—नारायणपुर एवं रायपुर
महाराष्ट्र (३)—बम्बई, नागपुर एवं पूणे
मेघालय (२)—चेरापुँजी एवं शिलौंग
उड़ीसा (३)—भुवनेश्वर एवं पुरी (२)
राजस्थान (२)—जयपुर एवं खेतड़ी
तमिलनाडु (१२)—चेंगलपट्टु, कोयम्बटूर, काँचीपुरम्, मद्रास (५), मदुरै, नट्टरमपल्ली, ऊटी एवं सलेम
त्रिपुरा (२)—विवेकनगर (आमतली) एवं अगरतला
उत्तर प्रदेश (११)—इलाहाबाद, अल्मोड़ा, कनखल, कानपुर, किशनपुर, लखनऊ, मायावती, श्यामलाताल, वाराणसी (२) एवं वृन्दावन
पश्चिम बंगाल (३३)—आँटपुर, आसनसोल, बाँकुड़ा, बारासात, बेलुड़, कलकत्ता (६), चण्डीपुर, काँथि, गड़बेत्ता, इच्छापुर, जलपाईगुड़ी, जयरामबाटी, कामारपुकुर, मालदा, मनसाद्वीप, मेदिनीपुर, नरेन्द्रपुर, पुरुलिया, रहड़ा, रामहरिपुर, सारगाछी, सरिषा, सिकड़ाकुलीनग्राम, टाकी एवं तमलुक

ब) विदेशी शाखा केन्द्र

अर्जेन्टीना (१)—बुयेनस एयर्स
बंगलादेश (१०)—बागेरहाट, बलियाटि, बरिशाल, ढाका, दिनाजपुर, फरिदपुर, हबिगंज, मयमनसिंह, नारायणगंज एवं शिलहट्ट
कनाडा (१)—टारेन्टो
फिजी (१)—नादि
फ्रांस (१)—ग्रेज (पेरिस के पास)
जापान (१)—कनसाग्रा-केन (कामाकुड़ा के पास)
मॉरिशस (१)—वेकोयास
निदरलैंड (१)—आमस्टेलवीन
रूस (१)—मास्को
सिंगापुर (१)—सिंगापुर
स्विट्जरलैंड (१)—जेनेवा
इंगलैंड (१)—बोर्नएण्ड (लन्दन के पास)
अमेरिका (१२)—बार्कले, बोस्टन, शिकागो, हॉलिवुड, न्युयार्क (२), पोर्टलैंड, प्रोभिडेन्स, सैक्रामेन्टो, सैनफ्रान्सिस्को, सियाटल एवं सेन्टलुइस
श्रीलंका (१)—कोलम्बो

(रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन, जेनरल रिपोर्ट, अप्रैल १९९६ से साभार।)

श्रीरामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर
छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार)
दूरभाष : 06152-22639

स्वामी विवेकानन्द प्रतिमा-स्थापन

नम्र निवेदन

प्रिय महोदय / महोदया,

आपको यह सूचित करते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही है कि पश्चिमी जगत में भारतीय धर्म और अध्यात्म की विजय पताका लहराने के उपरान्त दिग्विजयी **स्वामी विवेकानन्द** के भारत प्रत्यागमन के शताब्दी-महोत्सव वर्ष की स्मृति में स्वामी विवेकानन्द की आदमकद कांस्य-प्रतिमा की स्थापना करने का शुभ संकल्प छपरा के नागरिकों ने लिया है। छपरा स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी अद्‌भुतानन्द (लाटू महाराज) के जन्म-जिला का मुख्यालय है।

श्री लालू प्रसाद, माननीय मुख्यमंत्री, बिहार ने कृपापूर्वक स्वामीजी की प्रतिमा का शिलान्यास गत १ मार्च, १९९७ को किया है।

मनुष्य-निर्माण, चरित्रगठन, सामाजिक न्याय, सर्वधर्म समभाव एवं भारत के पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा एक विद्युत-तरंग का कार्य करेगी एवं वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा का प्रकाशपुंज सिद्ध होगी— यह निर्विवाद है।

अतएव, आपसे हमारा नम्र निवेदन है कि इस याज्ञिक कार्य में उदारतापूर्वक दान देकर हमारे विनम्र प्रयास का सहभागी बनने की कृपा करें। इस महनीय कार्य में बड़े से बड़ा दान भी अल्प है और छोटे से छोटा दान भी महत्तम है।

स्वामीजी की कृपा आप पर निरन्तर बरसे—यही प्रार्थना है।

प्रेम और शुभकामनाओं सहित—

स्वामी विवेकानन्द चरणाश्रित
आपका
(डॉ० केदारनाथ लाभ)
सचिव

२५ अप्रैल, १९९७

चेक या ड्राफ्ट रामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम, छपरा (बिहार) के नाम से भेजने की कृपा करें। नकद रुपये मनीआर्डर से भेजे जा सकते हैं।

श्रीमती गंगा देवी, अघोरकाशा नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।